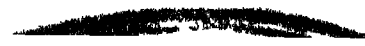
खोटा बेटा

लेखक—
विश्वम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक'



विनोद पुस्तक मन्दिर
हास्पिटल रोड, आगरा।

प्रकाशक—
राजकिशोर अग्रवाल
विनोद पुस्तक मन्दिर,
हॉस्पिटल रोड, आगरा।

प्रथम संस्करण—मार्च १९५९
मूल्य ३)

मुद्रक—
राजकिशोर अग्रवाल
कैलाश प्रिंटिंग प्रेस,
बाग मुजफ्फरखाँ, आगरा।

भूमिका

स्वर्गीय पडित विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' हिन्दी कथा-साहित्य मे अपनी अद्‌भुत वर्णन शक्ति मानवीय सवेदनाओ के सफल चित्रण, जनवादी दृष्टिकोण, सरल, सहज-ग्राह्य भाषा एवं शैली के कारण प्रेमचन्द के समकक्ष ठहरते है। समस्त हिन्दी कथा-साहित्य में अकेले 'कौशिक' जो ही ऐसे कथाकार है जो इस क्षेत्र मे प्रेमचन्द के सबसे अधिक निकट हैं। 'माँ' और 'भिखारिणी' नामक इनके उपन्यास प्रेमचन्द कालीन उपन्यासो मे अत्यन्त आदर की दृष्टि से देखे और पढे जाते है। इनकी 'ताई' शीर्षक कहानी विभिन्न कहानी-सग्रहो मे सग्रहीत होती रही है और उसके बिना कोई भी कहानी-सग्रह पूर्ण नही माना जाता है। परन्तु इधर 'कौशिक' जी की ही कहानियो का संग्रह प्रकाश में नही आ पाया। उनके कुछ पुराने कहानी-सग्रह अवश्य उपलब्ध हुए हैं परन्तु आज कही भी उनकी चर्चा नही सुनाई पडती। इसी अभाव को दूर करने के लिए विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ की फाइलो मे लुप्तप्राय: पड़ी हुई उनकी कहानियों का उद्धार कर यह कहानी-सग्रह हिन्दी के पाठको की सेवा मे प्रस्तुत किया जा रहा है जिससे हमारी पीढी एवं आगे आने वाली पीढ़ी 'कौशिक' जी के महत्व को पहचाने और उनका उचित मूल्यांकन करने का प्रयत्न करे। इसके पश्चात् शीघ्र ही 'कौशिक' जी के दो-तीन कहानी सग्रह और भी प्रकाशित किए जा रहे हैं। विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा के संचालक इस प्रयत्न मे हैं कि वे 'कौशिक' जी के समस्त-साहित्य को उपलब्ध कर उसे प्रकाशित करें।

कहानीकार 'कौशिक' जी की कहानियां प्राय: संक्षिप्त होती हैं। वे ए क ही कहानी में देश, समाज, जीवन की विविध समस्याओं को एक

साथ ही सुलझाने का प्रयत्न न कर जीवन के किसी विशिष्ट अंग को अपने कथ्य का विषय बनाते हैं और उनकी सशक्त लेखनी के चमत्कार् द्वारा वह विशिष्ट अग अपने पूर्ण, स्पष्ट एव मनमोहक रूप मे उपस्थित होता है। 'उलझन' से उन्हें विरक्त है; निराशा या अवसाद को वे अपने पात्रो के पास फटकने भी नही देते। उनके पात्र अपूर्व उमग से भरे हुए जीवन-पर्यन्त संघर्षो मे लगे रहते हैं। लेखक का मानवतावादी दृष्टिकोण, जिसमें आदर्श का भी गहरा पुट रहता है, पाठक को निरन्तर संघर्षरत रहने की प्रेरणा प्रदान करता रहता है। 'कौशिक' जी के साहित्य का यही महत्व है जो उन्हे अमर बनाने के लिए यथेष्ठ है।

—राजनाथ शर्मा

विषय-सूची

खोटा बेटा



विजय



(अ)

जिस समय कुँअर रत्नसिंह की वयस पन्द्रह वर्ष की हुई, उस समय उन्हे अपनी हीन-अवस्था का ज्ञान हुआ। उनकी माता योगमाया अपने पति के कुछ विश्वस्त नौकरो के सहित गाँव में एकान्त जीवन व्यतीत कर रही थी। रानी योगमाया के पति शिवसिंह एक छोटे से राज्य के स्वामी थे। वही राज्य उनकी जन्मभूमि था। अपनी पैत्रिक मान मर्यादा की रक्षा में राजा शिवसिंह का वैमनस्य एक ऐसे राज्य से हो गया जो उनसे अधिक शक्तिशाली था। पर वे स्वतन्त्र थे। किसी के आगे सिर झुकाना उनके लिये असम्भव था। परिणाम यह हुआ उन्होने युद्ध मे वीर गति पाई।

रानी योगमाया की प्रबल इच्छा थी कि वह चिता पर पति का साथ दे। किन्तु उस समय कुमार रत्नसिंह की अवस्था चार ही वर्ष की थी। रानी के सिवा उसका कौन था! पुत्र-प्रेम और पति-प्रेम मे द्वन्द

हुआ और अन्त में पुत्र-प्रेम के सामने पति-प्रेम न ठहर सका। रानी योगमाया ने अपने राज्य से बीस कोस दूर जाकर शरण ली और अलकार तथा जवाहिरात बेचकर जीवन के दिन बिताने लगीं। उसका जीवन कुमार के सहारे ही चल रहा था अन्यथा ससार मे कोई ऐसा आकर्षण नही था, जो उसके प्राणो को शरीर मे स्थिर रखता। इस प्रकार ग्यारह वर्ष बीत गये।

कुमार की वयस १५ वर्ष की हुई। बचपन से ही वह शिकार का शौकीन था। वह लालसा अब बढ गई। एक दिन कुमार गॉव से दो कोस की दूरी पर अपने एक विश्वस्त नौकर शेरसिंह के साथ घूम रहा था। शेरसिंह महाराज शिवसिंह का एकमात्र सच्चा मित्र था। सच तो यह है कि अगर महाराज ने कुमार की रक्षा का भार शेरसिंह को न सौपा होता तो महाराज की लाश शेरसिंह की ही लाश पर गिरती।

\+ + + +

बडी देर तक व्यर्थ घूमते रहने पर कुमार का जी ऊब उठा। वह घर लौटने की इच्छा ही कर रहा था कि सहसा उसी समय तेजी से कोई जानवर सामने से आता दिखाई दिया। कुमार ने बन्दूक उठाकर निशाना लगाया। गोली सर मे बैठी। जानवर चीख मार कर गिर पड़ा। पास मे पहुचकर कुमार ने देखा कि सुअर के शरीर मे कई जख्म हैं और उन जखमो से खून वह रहा है। कुमार ने शेरसिह को बुलाकर कहा—'मैने तो एक ही गोली मारी परन्तु इसके कई घाव हैं और जख्म भी ताजे . . ।"

कुमार अपनी बात पूरी भी नही कर पाया था कि पसीने से तर तीन मनुष्य हाथ मे भाला लिये आ पहुंचे। सुअर को मरा देख एक ने कहा—"बहुत दौडाया पर अब तो हाथ लगा!"

कुमार हक्का बक्का होकर तीनो की ओर देखने लगा। उनमे से एक ने कमर से रस्सी खोलकर सुअर को ले जाने के इरादे से बांधना

शुरू कर दिया।

कुमार क्रुद्ध हो पडा और बोला—"यह क्या ? इसे कहाँ लिये जाते हो ? मैने इसे गोली से मारा है।"

कुमार का चेहरा लाल हो उठा। वह अपना शिकार दूसरे को देने को तैयार नही था।

उनमे से एक ने दबी जबान से कहा—"यह अच्छी रही। दो घण्टे से हम इसके पीछे दौड रहे हैं और अब यह इनका हो गया। सरकार ! गोली से सुअर नही मारा जाता ?"

कुमार का चेहरा तमतमा उठा। उन्होने तलवार की मूठ पर हाथ रख कर कहा—"देख वे ! सभाल कर बात कर, नही तो सुअर की लाश पर तेरी भी लाश गिरेगी।"

शेरसिंह ने मुसकरा कर कहा—'बेटा यह तुम्हारे किस काम का। ये विचारे इसके लिये तग हुये। इन्होने इसे जख्मी भी खूब कर डाला था इसलिये यह इन्ही का शिकार हैं। इन्हे ले जाने दो। इन बेचारो का भोजन चलेगा।"

कुमार ने कहा—'कदापि नही ! मैंने इसे मारा अतएव मेरी चीज है। मुझे अपनी चीज पर अधिकार है। मै यह कभी स्वीकार नही कर सकता। माँग कर भले ही ले जांय पर अधिकार जमा कर नही ले जा सकते।"

शेरसिंह के माथे पर बल पड गये। उसका चेहरा तमतमा उठा। आंखें लाल हो गई। उसने कुछ कर्कश स्वर मे कहा—'बार बार क्या कहते हो कि मेरी चीज है, मेरा अधिकार है।' दूसरे के जख्मी किये हुये सुअर पर इतना अधिकार ! बडे शरम की बात है। जिस पर तुम्हारा अधिकार है, जो तुम्हारी चीज है, जिसे दूसरे हडप किये बैठे हैं, उसकी तुम्हे खबर तक नही।"

एक सांस ही मे शेरसिंह ने यह सब कह डाला और जब उसने

एक गहरी साँस ली तो ऐसा मालूम होता था कि उसके कलेजे से एक बडा काटा निकल गया ।

कुमार चौक सा पडा । उसके हृदय मे अपनी उस अज्ञात चीज की कल्पनाये घूमने लगी । कुमार ने कहा– "क्यो काका ? वह कौन चीज है जिस पर मेरा अधिकार है और जिसे दूसरे हडप किये बैठे हैं ।"

कहने को तो शेरसिह कह गया, किन्तु उसे अपनी भूल मालूम हो गई । पर तरकश से निकला हुआ तीर और जबान से निकली हुई बात तो वापस हो ही नही सकती । अब क्या किया जाय ? कुमार पूरी बात जाने बिना मानेगा ही नही । वह हृदय की कसौटी पर यही बात कस रहा था कि अभी इस बात के कहने का उपयुक्त समय आया है कि नही ?

शेरसिह इसी उधेडबुन मे पड गया । बात कह कर मौन हो जाने से कुमार की उत्सुकता और बढ़ी । कुमार ने सोचा कि इसमे कोई गूढ बात अवश्य है । शिकारियो की ओर देख कर उसने कहा—'ले जाओ इसे ।' यह कह कर वह शेरसिंह से बोला—"चलो काका, घर चले ।"

❀ ❀ ❀

दोनो घर की ओर चल पडे । थोड़ी दूर चल कर कुमार रत्नसिंह ने कहा—"हाँ, काका ! मेरी बात का जवाब नही दिया ।"

शेरसिह ने उदास भाव से कहा—"क्या उत्तर दे ?"

कुमार—"जो ठीक उत्तर हो ।"

शेरसिह फिर चुप हो गया ।

कुमार—"आप सोच काहे करते हो ।"

शेरसिह को सोच विचार का समय नही था । उसने एक मिनट मे फैसला कर लिया कि जो होना था सो हो गया । अब असल बात कह देना ही चाहिये, परिणाम ईश्वर के हाथ है ।

शेरसिह ने ठण्डो सास भर कर कहा—"कुमार ! तुम्हे अभी तक

ज्ञान नही कि तुम कौन हो, तुम्हारे पिता क्या थे और तुम्हारी जन्मभूमि कौन है ?'

कुमार ने कहा—"नही ।"

एक एक करके शेरसिंह ने पिछली घटनायें बता दी कि किस तरह स्वाभिमान और जन्मभूमि की स्वतन्त्रता की वेदी पर कुमार के पिता ने अपनी कुरबानी कर दी। पुरानी घटनाओ की स्मृति सजीव होते ही शेरसिंह का दबा हुआ कलेजे का घाव हरा हो गया। शेरसिंह रो पडा, कुमार की हिचकी बंध गई।

आँसुओं की धार के बीच शेरसिंह ने घटनाओ का क्रम बांधते हुये कहा—"कुमार तुम उस पिता की सन्तान हो जिसने बडी से बडी शक्ति के सामने अपना सर ऊंचा रक्खा। मेरी प्रबल इच्छा यही रही है कि एक दिन स्वदेश को मै अन्यायियो के पजे से छुडाने का प्रयत्न करूं या तो सफल हो जाऊं या वीर गति पाऊँ। पर मेरी इच्छा तुम्हारे ऊपर निर्भर है। इसी आशा ने मुझे अब तक जीवित रक्खा है।"

कुमार ने आँसू पोछ डाले। आँखे उबल आईं, भवे तन गई, होठ कांपने लगे। उसने शेरसिंह का हाथ पकड कर कहा—"तुमने यह बातें कह कर भूल नही की। मै प्रतिज्ञा करता हूँ कि आज से स्वदेश को मुक्त करने के लिये सर्वस्व त्याग दूंगा।"

शेरसिंह का चेहरा गर्व और उत्साह से खिल उठा। यही दो वाक्य सुनने के लिये उसने अपने स्वामी का साथ नही दिया था। उसने एक आह भर कर कहा—'अब मै समझ गया कि मेरा शेष जीवन सार्थक होगा।"

(ब)

रात के आठ बजे दो व्यक्ति अजीतगढ की गलियो मे घूमते हुए एक मकान के द्वार पर पहुँचे। द्वार पर पहुँच कर उनमे से एक ने

दरवाजे पर धक्का मारा ।

किसी ने कहा कौन है ?"उसने कहा खोलो।' कुछ क्षण पश्चात एक युवक ने किवाड़ खोल कर पूछा—"कहिए! क्या काम है?"

उस आदमी ने कहा—"फतेहसिंह है ?"

युवक—"हैं तो सही! कहिये पर—क्या काम है ?"

उस आदमी ने कहा—"कह दीजिये कि उनका एक मित्र उनसे मिलना चाहता है!"

युवक भीतर चला गया और थोड़ी देर मे आकर बोला—"चलिये! भीतर चलिये ?"

दोनो व्यक्ति भीतर चले गये।

एक दालान मे एक बुड्ढा बलवान पुरुष चारपाई पर बैठा हूक्का पी रहा था। सामने एक चारपाई पड़ी थी। बुड्ढे ने हुक्के की गुड़-गुडी से धुंआ निकालते हुए कहा—'-बैठिये। क्या काम है ?"

आगन्तुकों मे एक वृद्ध सा था जिसके मुंह का अधिकांश भाग सफेद दाडी से ढका था। उसने चारो ओर देखा ! कोई नही था। उसने फतेहसिंह से कहा—"क्या शेरसिंह को भूल गए!" हरेक शब्द मे करुणा और वेदना थी। यह कहते ही उसने नकली दाढी निकाल दी।

फतेहसिंह उठ कर शेरसिंह के गले से लिपट गया।

दोनो मित्र कुछ क्षण तक लिपटे रहे, रोमाच हो आया। आसू की धारा बह निकली। फतेहसिंह ने शेरसिंह को अपनी चारपाई पर बैठा कर कहा—"ओफ ग्यारह वर्ष के बाद दर्शन हुए। मैं तो तुम्हे...।"

शेरसिंह—'क्या करू भाई। प्राण बचाये कोने मे पड़ा हूँ। तब से मरा सा ही हूँ।'

फतेहसिंह ने ठण्डी सांस खीच कर कहा—

"महाराज के समय की बाते अब तो स्वप्नवत् हो गई। सच है मरने के बाद ही किसी का असली मूल्य मालूम होता है।"

"क्यो क्या हुआ ?" शेरसिंह ने पूछा। '-हुआ क्या ? प्रजा की नाक मे दम है। नित नये अत्याचार हो रहे है। सुख से बैठ कर रोटी खाना भूतकाल की बात हो गई है। महाराज शिवराज सिह का अजीतगढ स्वर्ग से नरक हो गया है।"

शेरसिंह—'-पर क्या अत्याचार देखकर भी आपका ध्यान जन्म भूमि को अत्याचारियो के पजे से छुडाने की ओर नही जाता।"

फतेहसिंह की भवें तन गई। उसने कहा—"ध्यान !! इसी चिंता मे घुला जा रहा हू। मेरे अधिकार मे हजार पाच सौ आदमी हैं पर क्या करू, कोई अगुआ तो नही होता। कोई ऐसा तो आजाय जिसके भरोसे काम करू।"

शेरसिंह ने एक क्षरण सोच कर कहा—"और अगर मिल जाये।"

फतेहसिंह -"तो फिर अपने दो ढाई सौ आदमियो को ही ले कर जान पर खेल कर बता दू।"

शेरसिंह ने कुमार की ओर इशारा करके कहा—"तो सरदार यह है हमारे स्वामी का अन्तिम चिन्ह—अजीतगढ का उत्तराधिकारी कुमार रत्नसिंह—"

फतेहसिंह गदगद हो उठा। वह कुमार के पैरो पर गिरना ही चाहता था कि कुमार ने उन्हें पकड़ कर प्रेम से अपने को उनकी बांहो मे डाल दिया। दोनों रो पड़े और खूब रोये। शेरसिंह भी रो पड़ा।

फतेहसिंह ने कहा—"आज मेरे शरीर मे बल आ गया है। या तो अपने देश को मुक्त करेंगे या लड़ भिडकर अपने प्राण देंगे।"

इसके बाद तीनो मे बडी देर तक परामर्श होता रहा।

(स)

रात के ग्यारह बजे अजीतगढ से दो कोस की दूरी पर एक पहाड़ की बडी खोह मे कुमार सहित फतेहसिंह, शेरसिंह तथा अन्य दस बारह

हथियारबन्द आदमी बैठे है। खोह के अन्दर मशालो की रोशनी हो रही है। खोह के द्वार पर चार हथियार बन्द जवान खडे हैं। थोडी देर मे अजीतगढ की ओर से आदमी आना आरभ हुए। चार चार छः छः आदमियो की टोली साथ साथ आती थी। पहरे वाले उनसे कोई शब्द पूछकर उन्हे भीतर जाने की आज्ञा देते थे। इसी प्रकार दो तीन बजे तक ढाई तीन सहस्त्र आदमी जमा हो गए। तत्पश्चात फतेहसिंह ने उठ कर उच्चस्वर मे कहा—'भाइयो तुम सब वीर क्षत्री हो, तुम्हारे शरीर मे क्षत्रियो का गर्म खून बह रहा है। क्या तुम अब भी अत्याचार सहने के लिए तय्यार हो? क्या तुम्हे यह बात पसन्द है कि, पडौस का एक छोटा सा सरदार अजीतगढ मे तुम पर शासन करे और हर समय तुम्हारा रक्त चूसे। तुम्हारी बहू बेटियो को ताके। क्या तुम चाहते हो कि तुम्हारी मातृ-भूमि पर दूसरो का अधिकार रहे?"

सबने एक स्वर होकर कहा—"कदापि नही। हमे मर जाना स्वीकार है, पर यह स्वीकार नहीं।"

फतेहसिह-"यदि यह बात है तो उसके पजे से अपने देश को छुडाने का आज प्रण कर लो। मातृ-भूमि की लाज तुम्हारे ही हाथ है।"

उनमे से कुछ लोगो ने कहा—"हम प्रण तो सब कुछ कर लें, पर किसके भरोसे? हमारा सरदार कहाँ है? अजीतगढ के सिंहासन पर किसे बिठाओगे?"

तब फतेहसिंह ने कुमार को आगे करके कहा—"अपने सरदार को देखो। अजीतगढ के सिंहासन के उत्तराधिकारी को देखो। महाराज के पुत्र युवराज रत्नसिंह को देखो!"

छ सहस्त्र आँखे एकदम से कुमार के ऊपर पडी। कुमार तन कर खड़ा हो गया। उसके मुख पर एक अपूर्व प्रतिभा आ गई। लोगो पर उस प्रतिभा का प्रभाव पडा। सबने देखा कि उनके सामने वास्तव में कोई राजा खडा हैं। लोगो के हृदय में उसके प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई।

सबका हृदय उसकी ओर आकर्षित हुआ। सबने एक स्वर से चिल्ला कर कहा—"युवराज चिरजीव, युवराज की जय हो, हम युवराज के लिए प्राण देने को तय्यार है।"

फतेहसिह ने अपनी तलवार उठा कर कहा-"आओ,हम सब प्रतिज्ञा करे कि मरते दम तक युवराज का साथ देगे।"

इतना कह कर सभो ने अपनी अपनो तलवारे चूम ली।

अभी तक कुमार चुप खडा था। अब उसने उच्च स्वर से कहा-"भाइयो, सोते हुए शत्रु पर आक्रमण करना क्षत्रिय धर्म के विरुद्ध है। हमे रात भर ठहर कर प्रातःकाल आक्रमण करना चाहिए।"

सबेरा होते ही घमासान युद्ध छिड गया। युवराज रत्नसिह के योद्धा अपने युवराज के प्रेम मे पागल हो रहे थे। अतएव वे जान पर खेल कर लड़े। ऐसी दशा मे उनके सामने कौन टिक सकता था? कुछ घन्टों मे युवराज की विजय होगई। अधिकाश शत्रु सेना रणक्षेत्र में वीरगति को प्राप्त हुई जो शेष रहे वे कैद कर लिये गये।

युध्द समाप्त होने पर युवराज ने शेरसिह को न पाया। उसने घबरा कर पूछा–शेरसिंह कहा है? फतेहसिंह ने कहा, मैंने उन्हे किले के सरदार को रोकते देखा था उसके पश्चात मुझे वह नही दिखाई पड़े।

इसी समय कुछ आदमी शेरसिंह को उठाये हुए लाये। शेरसिंह घावो के कारण मृतप्राय हो रहा था।

युवराज ने व्याकुल होकर शेरसिंह को अपनी गोद मे लिटा लिया और शेरसिह के सिर पर हाथ फेरने हुए कहा 'काका यह क्या हुआ?'

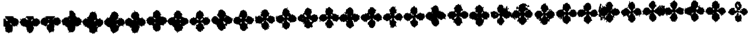
शेरसिह ने धीरे धीरे आँखें खोल कर युवराज को देखा और किंचित मुस्कराकर कहा-"मातृभूमि की विजय।"

इतना कहकर शेरसिह ने सदैव के लिए आँखें बन्द कर ली।





विषमता



रात के आठ बजे थे। शकरलाल के कमरे मे उनके तीन मित्र बैठे थे। इनके नाम रामसनेही, दुर्गाप्रसाद तथा त्रिवेणीप्रसाद थे। इन सब की वयस २३ से लेकर २५, २६ वर्ष की थी। शंकरलाल एक श्री-सम्पन्न युवक हैं। इनके ये मित्र नित्य संध्या समय इनके यहाँ आकर जमा होते हैं और ताश, केरम, शतरज इत्यादि से मनोरजन करते हैं।

शकरलाल जम्हुवाई लेकर बोला, 'आज बनवारी नही आया।"

"हां, आज न जाने कहाँ रह गया।" दुर्गाप्रसाद ने कहा, "किसी काम मे फंस गया होगा, अन्यथा वह रुकने वाला आदमी नही। रस्सियाँ तुड़ाकर आता है।" रामसनेही बोला।

"यार खाली क्या बैठे हो। आओ ब्रिज ही उडे।" त्रिवेणी ने कहा।

"भई मै इस समय ब्रिज के मूड में नही हूं।" शकरलाल ने कहा।

"तो जाने दो।" दुर्गाप्रसाद ने कहा।

शकरलाल बोला—"आज कुछ तबियत न जाने कैसी है। किसी

बात मे लगती ही नही।"

इसी समय रेडियो से आवाज़ आई —"यह दिल्ली है। अभी आप—।"

शकरलाल ने हाथ बढ़ाकर स्विच बन्द कर दिया। स्विच बन्द करके बोला—खामखाह कान खाये जा रहा है।"

"अब रेडियो मे आनन्द नही आता। गायको और गायिकाओ की एक निश्चित सख्या है—लौट-फेर के वे ही आते रहते हैं।" दुर्गाप्रसाद बोला। "और लायेंगे कहाँ से।" रामसनेही बोला। इसी समय नौकर ने एक परचा लाकर दिया।

शङ्करलाल ने उससे पूछा—"कहाँ से लाया है?"

"बाबू बनवारीलाल का आदमी लाया है।" बनवारीलाल का नाम सुनकर सब के कान खड़े हो गये। शङ्करलाल ने परचा पढ़ा। पढकर बोला—' बनवारी ने हम सबको अपने घर पर बुलाया है।"

"क्यो?" दुर्गाप्रसाद ने पूछा।

"यह तो कुछ लिखा नही। केवल यह लिखा है कि परचा देखते ही सब लोग तुरन्त चले आओ।" यह कहकर शङ्करलाल ने पर्चा दुर्गाप्रसाद को दे दिया।

दुर्गाप्रसाद के सहित तीनो व्यक्तियों ने परचा पढ़ा। परचा पढ कर दुर्गाप्रसाद शङ्करलाल से बोला—"क्या राय है?"

"राय क्या! जब बुलाया है तो चलना चाहिए।" यह कह कर शङ्करलाल नौकर से बोला—"उनके आदमी से कह दो—अच्छा! और बशी से कहो कार ले आये।" आदमी चला गया। शकरलाल बोला—"तब तक मैं कपड़े पहन लूँ।"

दस मिनट मे शङ्करलाल कपड़े पहन कर आगया। उधर कार भी आगई। चारो व्यक्ति बाहर निकले। शकरलाल बशी ड्राइवर से बोला—"तुम बैठो, मैं खुद ले जाऊँगा।"

यह कहकर शंकरलाल ड्राइवर की सीट पर बैठ गया। उसके बगल मे दुर्गाप्रसाद तथा पीछे की सीट पर रामसनेही तथा त्रिवेणीप्रसाद बैठ गये। कार रवाना हुई।

दुर्गाप्रसाद ने पूछा—"भला क्यों बुलाया है ?" "क्या जाने ! कोई खास बात होगी।"

"अगर खास बात न हुई और बेकार मे परेशान किया होगा तो मै बिना चपतियाये छोड़ूँगा नही।"

शङ्करलाल हँस कर बोला—"कोई न कोई बात अवश्य होगी। अकारण ही कभी न बुलाया होगा।"

इसी प्रकार बाते करते हुए पन्द्रह मिनिट मे ये लोग बनवारी के मकान पर पहुँच गये। कार से उतर कर चारो व्यक्ति बनवारी के कमरे मे पहुँचे। बनवारी इन लोगों की प्रतीक्षा ही कर रहा था। इन सबको देखते ही बोला—"आओ भई !"

चारो व्यक्ति बैठ गये। दुर्गाप्रसाद ने कहा-"कहिये, क्या हुक्म है ?"

"कुछ नही ! ऐसे ही बुला लिया।" बनवारी बोला। "क्या ? ठीक ठीक बताओ वरना आज पिट जाओगे। मै प्रतिज्ञा करके चला हूँ।" दुर्गाप्रसाद ने कहा। बनवारी ने मुस्कराकर पूछा—"क्या प्रतिज्ञा की है ?" "यही कि यदि बिना किसी खास कारण के बुलाया होगा तो बिना पीटे नही छोड़ूँगा।"

'अच्छा मान लो कोई खास कारण नही है।"

"मेरा ऐसा मानना तुम्हारे लिए खतरनाक होगा यह याद रखना।"

शङ्करलाल बोल उठा—"अच्छा दिल्लगी हो चुकी अब ठीक ठीक बताओ, क्या बात ह।"

"अच्छा कोई बढिया बात बताई तो क्या दिलवाओगे ?"

"हलवाई की दुकान पर बिठाकर पूड़ियाँ खिलवा देगे।" त्रिवेणी प्रसाद बोल उठा !

त्रिवेणी के तीनो साथी हँस पडे। बनवारीलाल बोला—"अपनी हैसियत के अनुसार ठीक कहता है। बेचारे की इतनी ही हैसियत है।"

शङ्करलाल बोले—"ओफ–ओह ! दुनिया भर की बाते करोगे परन्तु मतलब की बात न कहोगे।"

"अच्छा इधर कान लाओ !" बनवारी बोला। शङ्करलाल बनवारी के मु ह के पास अपना कान ले गये। बनवारी ने कुछ कहा जिसे सुनकर शङ्करलाल का चेहरा खिल उठा और वह बोला—"अच्छा ! मजाक तो नही करते हो ?"

क्या बात करते हो ! मजाक का क्या काम।"

दुर्गाप्रसाद बोला—"यार तुम लोग चुपके-चुपके बातें कर रहे हो हम लोग बेवकूफ बने बैठे है।"

"कोई आज नये थोडे ही हो हमेशा के बेवकूफ हो।"

"अब तुम निश्चय मार खाओगे।"

शङ्करलाल बोला—"मरे क्यो जाते हो ! मिस रोज के यहा चलना है।"

यह सुनते ही तीनो व्यक्ति प्रसन्न होकर बोले—"अच्छा !" दुर्गाप्रसाद बोला—"गुड ब्वाय ! मै तो पहले ही जानता था कि बनवारी बिना कोई खास बात हुए बुलाने वाला नही है।"

बनवारी बोला—"अच्छा तो अब देर मत करो, चलो"

(२)

शकरलाल तथा उनके चारो मित्रो का दल एक नये बिगडे युवको का दल था। इनमे प्राय. सबके सब धनी परिवार के थे। शंकरलाल के पिता की मत्यु हो चुकी थी और वे काफी सम्पत्ति छोड गये थे। बनवारीलाल के भी पिता मर चुके थे। त्रिवेणी के पिता अपने व्यापार के काम मे इतने व्यस्त रहते थे कि उन्हे पुत्र पर नियन्त्रण रखने का

अवकाश ही न था। अपने व्यापार के सम्बन्ध में उन्हें बहुधा विदेश मे ही रहना पड़ता था, इस कारण त्रिवेणी को मनमानी करने का यथेष्ट अवसर मिलता था। दुर्गाप्रसाद के पिता बहुत वृद्ध थे। इस कारण वह अपने घर का स्वयं ही मालिक था। इनमे केवल रामसनेही ही ऐसा था जो न तो इन लोगों की भाँति धनी था और न स्वतन्त्र तथापि वह इन लोगो के साथ घूमने-फिरने का समय निकाल लेता था और मित्रता के कारण, उसे इन लोगो के साथ रहने मे अपनी जेब से कुछ खर्च भी न करना पडता था। वैसे तो ये लोग "सब गुन पूरे" थे, परन्तु इधर कुछ दिनो से एक चरित्रहीन ऐंग्लो-इण्डियन युवती मिस रोज के चक्कर में फँस गये थे। वह इन लोगों को खूब दुह रही थी। केवल रामसनेही ही उसके फन्दे से बचा हुआ था। इसके दो कारण थे। एक तो उसे मिस रोज के प्रति कोई विशेष अनुराग नही था दूसरे उसके पास इतना पैसा भी नही था कि वह मिस रोज को प्रसन्न कर सकता। इन सब बातो के अतिरिक्त उसकी प्रकृति मे सज्जनता तथा सच्चरित्रता भी थी। परन्तु इन लोगो की सगति के कारण उसकी प्रकृति मलावृत्त दर्पण की भाँति मलिन हो गई थी।

आज मिस रोज की दावत थी। शहर के बाहर शंकरलाल का एक बाग था जिसमे एक छोटा सा खूबसूरत बँगला बना हुआ था। इसी बाग मे दावत का आयोजन किया गया था। शङ्करलाल सध्या से ही वहाँ उपस्थित था। बगले के छोटे से हाल मे एक बडी गोल मेज को शकरलाल सजा रहे थे। माली गुलदानो मे फूल लगा रहा था। शकर-लाल निरीक्षण कर रहे थे। इसी समय शकरलाल का ड्राइवर बशी साइकिल पर आया। उसने आकर कहा—"हुजूर, ह्विस्की के तो दाम बहुत बढ़ गये है।"

"कितने बढ गये।"

"दो बोतल के पचास रुपये माँगते है वह भी कहते थे कि बाबू

जी कीखातिर, दूसरे से साठ लेते।"

शकरलाल के पास ही रामसनेही खडा था। वह बोला—"जाने दो बहुत मँहगी है।"

"जाने क्यो दो। बिना शराब के लुत्फ क्या खाक आयेगा। लाओ बशी ले आओ।"

"कोई और मँगा लो सस्ती सी।"

"सस्ती तो यही की बनी हुई मिलेगी-विलायती न होगी।" ब शी ने कहा।

"तुम ले आओ जी, देशी शराब किस काम की।" शकरलाल ने कहा।

ब ंशी चला गया।

"पचास रुपये की खाली शराब हो गई।"

"तो क्या हुआ! आप इतने ही मे चकरा गये।"

"चकराने की बात ही है। पचास रुपये की दो बोतल! कौन पीता होगा।"

शकरलाल हंस पडे। बोले—"क्या बात करते हो?"

"मै ऐसे आदमियो को जानता हूँ जो डेढ-दो हजार रुपये महीने की केवल शराब खर्च करते है।"

रामसनेही विस्मित होकर बोला—"क्या ठीक है।"

ये लोग दर्शनीय हैं। लेकिन क्या आप की मिस रोज भी नित्य विलायती ही पीती है। डेढ सौ रुपये मासिक तो वह वेतन पाती है विलायती कहाँ से पीती होगी।'

"ऐसे ही पीती है जैसे आज पियेंगी, अपने पल्ले से तो देशी ही पीती होगी।"

"तब फिर उसके लिए इतनी कीमती शराब मँगाने की क्या आवश्यकता थी।"

"अहमक हो ! हम अपनी हैसियत के अनुसार काम कर रहे है, उसकी हैसियत के अनुसार थोडे ही कर रहे है ।"

' यह बात है । वाकई आप को हैसियत से तो ठीक ही है ।"

"अब तुम समझ लो कि इस दावत का खर्चा कोई सौ रुपये से ऊपर बैठेगा ।"

"कुल ६ आदमियो मे ।"

"जी ।"

"हाँ भाई सब पैसे की माया है ।"

"और यह बिलकुल मामूली खर्च है ।"

"बस रहने दीजिये । मुझे ये बाते सुन कर क्रोध आता है ।"

"क्रोध ! यह क्यो ?

"इस फुजूल खर्ची पर !"

"यह फुजूलखर्ची नही है चोगानन्द ! यह है ऐश ! इसी को कहते है; जीवन का आनन्द ! वरना पेट तो सभी भर लेते है ।"

"आनन्द की व्याख्या आपने अच्छी की ।"

इसी समय बनवारीलाल, दुर्गाप्रसाद तथा त्रिवेणी भी आगये । उन्होने पूछा—"क्या बहस चल रही है ।"

शकरलाल हँसकर बोले—"रामसनेही को यह सब घोर फुजूलखर्ची दिखाई पड रही है ।"

"तुम भी किसके मुह लगे हो । हा क्या क्या इन्तजाम है ।" बन-वारी ने कहा ।

(३)

ठीक आठ बजे मिस रोज आगई । उसके आते ही ढलने लगी । रामसनेही के सामने भी ह्विस्की का ग्लास रक्खा गया । रामसनेही बोला—

"बस मुझे तो क्षमा कीजिये ।"

"यह क्यो, क्या तोबा कर ली ?"

"हाँ ! और आज ही तोबा की है ।"

"गधेपन की बातें तो करो नही । चुपचाप भले आदमी की तरह पीना शुरू कर दो ।"

"भई मुझे क्षमा करो ।"

मिस रोज बोली--"क्यो, आप तो पीता था ।"

"हाँ ! लेकिन आज से छोड़ दिया ।"

"बट व्हाई ?" (परन्तु क्यो)

"कोई खास बात नही—तबीयत नही चाहती ।'

"सिली ब्वाय !" रोज ने हँसकर कहा ।

"जाने दो ! नही पीता तो न सही ! कोई जबरदस्ती थोड़ी ही है ।"

"अच्छा लेमोनेड-सोडा तो पियोगे या उससे भी तोबा कर ली ।"

"हाँ वह पियूंगा ।"

"तो लो झख मारो बैठ के ।" शंकरलाल ने लेमोनेड की बोतल उसकी ओर बढाते हुए कहा । नौ बजे तक खाना-पीना होता रहा । इसके पश्चात हारमोनियम बजने लगा । शंकरलाल हारमोनियम बजाने लगा और दुर्गाप्रसाद ने गाना आरम्भ किया । रामसनेही बैठा सोच रहा था—"एक वे लोग हैं जिन्हें पेट भर भोजन भी नही मिलता । और एक ये हैं कि जरा देर के मनोरजन के लिए सैकडो खर्च कर देते हैं । कैसी विकट विषमता है । रामसनेही कुछ देर बैठा इसी प्रकार की बातें सोचता रहा । इसके पश्चात एकदम उठकर बोला—"अच्छा मैं तो अब चलता हूँ । "दस बज गया है ।"

"अरे बैठो भी—ऐसी क्या जल्दी पड़ी है ?" शंकरलाल ने कहा ।

"जाने दो—आज ज्ञानबाई का जोर है । पी हमने है और चढी इसे है ।" दुर्गाप्रसाद बोला ।

इसी समय बाग का माली आया। शकरलाल उसे देखकर कर्कश स्वर मे बोला—"यहाँ क्यो आये ?"

"हुजूर ! शाम को एक औरत बाग मे आगई थी।"

"कौन औरत ?" शकरलाल ने पूछा।

"पता नही। कोई गरीब मालूम होती है। वह एक पेड के नीचे लेट रही थी। मैंने उससे चले जाने को कहा तो वह बोली "अभी चली जाऊँगी।"

फिर मैं इधर फूल लेकर चला आया और यहाँ काम करता रहा। अब जो उधर गया तो देखा वह औरत पडी कराह रही है।"

"तो हम क्या करें। उसे बाहर कर दो।"

हुजूर मैंने उससे कहा, "पर वह कुछ जवाब नही देती पड़ी कराह रही है !"

"अरे उसे किसी तरह निकालो—रात मे मर-वर गई तो और परेशानी होगी।" दुर्गाप्रसाद बोला।

"वह तो जाती नही।"

"घसीट कर बाहर कर दो—जायेगी कैसे नही।" शकरलाल ने कहा।

रामसनेही बोल उठा—"चलो मैं चलता हूँ।"

रामसनेही चला गया। कुछ क्षण बाद लौट कर बोला—"भई उसकी हालत खराब है। उसे अस्पताल पहुँचवा दो।"

"कैसे पहुँचवा दें।"

-'तुम्हारी—कार तो है-उसमे भेज दो।'

"आप आदमी है या पजामा ? मेरी कार ऐसे लोगो के लिए है !'

'तो एक तागा मगवा लो।"

'यह अच्छा झझट लगा। तागा लाये कौन ?"

"तागा-इक्का यहाँ कहाँ मिलेगा-शहर जाना पड़ेगा।"

"मुझे बन्शी पहुँचाने जा रहा है, उधर से लेता आयेगा।"

"और फिर उसे अस्पताल कौन ले जायगा।"

"बन्शी को साथ कर देना।"

"अच्छा झगड़ा लगा। इस ससुरी को यही मरने आना था।"

रामसनेही को क्रोध आगया। वह बोला—"आप लोग आदमी है या हैवान! एक स्त्री के लिए तो आप क्षण-मात्र मे सैकड़ो खर्च कर देते है और एक गरीब के लिए जो मर रही है और जिसे सहायता की बेहद आवश्यकता है, उसे अस्पताल तक पहुँचाने मे आप उदासीन है। बडी लज्जा की बात है।"

शकरलाल बोल उठा—"ओफ-ओह! आज तो आप उपदेशक बने हुए है। क्या ठीक है। आप बड़े इन्सान है तो आप ही पहुचा दीजिए।"

"खैर! वह तो मै कर ही दूँगा, परन्तु यह याद रखिए कि आप ही जैसे लोग गरीबो और धनी लोगो के मध्य समाजवाद और साम्यवाद की खाई खोद रहे है। आप ही जैसे लोग गरीबो के हृदय मे धनिको के प्रति घृणा तथा क्रोध की ज्वाला भडका रहे हैं। जितना रुपया दस-बीस गरीबों का महीने भर तक पेट भर सकता है उतना रुपया आप थोडी सी देर के दिल बहलाव के लिए खर्च कर के भी एक मरती हुई गरीब औरत के लिए जरा सा कष्ट तक नही उठा सकते। अफसोस! इससे बढ कर हृदयहीनता और पशुता और क्या होगी।"

यह कह कर रामसनेही चला गया।

शकरलाल बोला—"यह पागल क्या बक गया?"

"बौडम है। ऐसो को तो पास भी न बैठने देना चाहिए।"

रामसनेही ने उस स्त्री को अस्पताल पहुँचा दिया और उसी दिन शंकरलाल एण्ड पार्टी का साथ सदैव के लिए त्याग दिया।





विधवा की होली



श्यामा की सास एक दरिद्र ब्राह्मणी है। उसका व्यवसाय केवल यह है कि किसी का कुछ काम करके, किसी की रोटी बना कर किसी की खुशामद करके, कहीं से दान-दक्षिणा लाकर अपना तथा अपनी विधवा पुत्र-बधू का पेट चलाती है। इन दो माँ-बेटी के अतिरिक्त इनके परिवार मे और कोई भी नही। श्यामा का यह रूप यह सौन्दर्य, जिसे देख कर यही कहना पडता है कि यह रूप और यौवन तो राजमहलो की चहारदीवारी के भीतर रहने योग्य था। एक गन्दे और छोटे मकान मे बन्द है। जो शरीर सदैव रेशम और मखमल मे शोभायमान होने योग्य था वह शरीर जीर्ण-शीर्ण मलिन वस्त्रों से ढका रहता है' जो रूप और यौवन किसी पुरुष-सिह के मनोरजन की प्यारी चीज बनना चाहिए था, वही रूप यौवन इस समय व्यभिचारियों और लम्पटो की पाप-दृष्टि का लक्ष्य बन रहा है। श्यामा का दुर्भाग्य उसके रूप और सौन्दर्य का उपहास करता हैं, उसका मजाक उडाता है।

+ + + +

श्यामा के पडोस मे एक अन्य ब्राह्मण-परिवार रहता था। उस परिवार मे एक लडका था शीतलाप्रसाद, उसकी वयस २१ वर्ष के लगभग थी। यह परिवार रोटी कपडे से खुश था। अतएव श्यामा को और उसकी माता को उससे कभी कभी कुछ सहायता मिल जाया करती थी। सहायता मिलने का एक बड़ा कारण यह था कि शीतला-प्रसाद श्यामा के घर आया जाया करता था। श्यामा को वह भाभी कहा करता था। श्यामा पर शीतलाप्रसाद की पाप-दृष्टि बहुत दिनो से थी। श्यामा पर उसकी पाप-वासना थी, बलिवेदी पर भेंट चढाने की चेष्टा में था, पर अभी तक उसका अभीष्ट पूरा नही हुआ था। श्यामा का व्यवहार उसके साथ इतना पवित्र था कि उसका कभी इतना साहस नही हुआ कि वह पाप वासना को श्यामा पर किसी प्रकार प्रकट करे। वह सुअवसर की खोज मे था। वह ऐसे समय की प्रतीक्षा मे था जब कि श्यामा सरलता-पूर्वक उसका शिकार बन जावे, वह ऐसा मौंका खोज रहा था जबकि, श्यामा चेष्टा करने पर भी उसके बाहु-पाश से न निकल सके।

शीतलाप्रसाद श्यामा की माता से बोला "चाची,होली आरही है।" श्यामा की माता ने कहा-"हाँ, बेटा आरही है,पर हम गरीबो को होली-दीवाली से क्या काम। हमारे लिए तो सब दिन बराबर हैं। हम तो अपने जीवन के दिन काट रही है। जितने दिनो दुख भोगना बदा है सो भोगेंगी। यदि आज मेरा सुन्दर (सुन्दरलाल श्यामा का पति) जीता होता तो हमे भी होली के आने का चाव होता,खुशी होती। अब तो हमारे लिए होली न दीवाली!

इतना कहतें हुए वृद्धा ने अपने नेत्र आचल से पोछे, उधर एक तरुणी-कान्ता का हाथ बर्तन मलते मलते कुछ क्षणों के लिए रुक गया, उसने भी उस हाथ की कलाई से आँखे मली। एक मर्म-भेदी नीरव आह छोड़ी।

शीतलाप्रसाद बोला-"अरे चाची, जो कुछ होना था हो गया, अब उसको याद करके कुढने से क्या लाभ ?"

वृद्धा—हाँ, बेटा लाभ तो कोई नही, पर घाव मे तो टीस उठती ही है। वह हानि—लाभ थोडा देखती है।"

शीतलाप्रसाद—"तुम अब मुझे ही अपना पुत्र समझो, तुम्हे जिस बात का कष्ट हो मुझसे कहो।

वृद्धा—"बेटा, भगवान तुम्हे चिरंजीव रक्खे। तुम्हारा सबका तो अब भरोसा ही है।"

शीतलाप्रसाद-"तो जिस बात की आवश्यकता हो मुझ से कहना।"

वृद्धा—"बेटा, और तो कुछ नही, श्यामा के लिए एक धोती हो जाती तो अच्छा था। लाख कुछ हो जब तक देह है तब तक तो लोकाचार करना ही पडेगा। होली पर पहनने के लिए लडकी के पास एक भी धोती नही है।"

शीतलाप्रसाद मन ही मन प्रसन्न होकर बोला—"बस चाची, इतनी ही सी बात! आज ही लो-एक जोडा धोती अभी लाता हूँ। यह कह कर शीतलाप्रसाद चला गया।

उसी दिन शाम को शीतलाप्रसाद ने धोती का एक जोड़ा लाकर वृद्धा को दिया और कहा—"लो यह धोती पूरा जोडा ले आया, और कोई चीज चाहिए तो कह देना।"

वृद्धा—"बस बेटा, भगवान तुझे बनाये रक्खे हमारी गरीबो की इतनी सहायता करते हो।"

शीतलाप्रसाद चल दिया।। चलते समय उसने श्यामा की ओर एक कटाक्ष-बाण छोड कर कहा—"भाभी इस बार तुम से होली खेलूँगा।"

श्यामा ने उसकी दृष्टि का मर्म समझ लिया। अबला का हृदय काँप गया।

*　　*　　*

होली आगई।

शीतलाप्रसाद बड़े प्रसन्न हैं कि श्यामा पर विजय प्राप्त करने का यह अच्छा अवसर मिला है।

वृद्धा कही जीविका की खोज मे गई थी। श्यामा घर मे अकेलीथी। शीतलाप्रसाद तो ऐसे अवसर की खोज ही मे थे जब कि श्यामा अकेली हो। अतएव वह पिचकारी और एक पुडिया सुगन्धित गुलाल की लेकर श्यामा के घर पहुँचा। श्यामा उसे देख कर घबरा गई। शीतला-प्रसाद ने मुस्कराकर कहा—"भाभी आज तो तुम्हे मेरे साथ होली खेलनी पडेगी।"

श्यामा ने कहा—"मैं अब क्या होली खेलूँ, होली खेलना मुझे शोभा नही देता।"

शीतलाप्रसाद "मेरे साथ होली खेलना तुम्हें शोभा देगा। यह कह कर शीतलाप्रसाद आगे बढ़ा। उसकी मुट्ठी मे गुलाल था—वह मुट्ठी उसने श्यामा के गालो की ओर बढाई।

श्यामा ने हाथ से रोक कर कहा—"जो तुम्हारी यही इच्छा है तो थोडा सा गुलाल मुझे दे दो मै तुम्हारी ओर से मल लूँगी।"

शीतलाप्रसाद—मुस्कराकर बोला—"वाह, यह कैसे हो सकता है—मैअपने हाथ से मलूँगा।"

श्यामा—"शीतलाप्रसाद, क्यो मुझे तङ्ग करते हो ?"

शीतलाप्रसाद—"यदि थोडी देर के लिए तग ही होलोगी तो क्या होगा, मै तो तुम्हारे लिए अपने प्राण तक देने को फिरता हूँ।"

यह कह कर शीतलाप्रसाद ने श्यामा को अपने बाहुपाश मे लेने के लिए हाथ बढाया। श्यामा ने पीछे हट कर कहा—"मान जाओ, मेरे साथ होली मत खेलो। मेरे साथ होली खेलना सहज नही।"

शीतलाप्रसाद—"यह तो मुझे मालूम है। तुम्हारे साथहोली खेलना

मेरे जैसे भाग्यबान को ही नसीब हो सकता है।"

श्यामा—"होली खेलना है तो दूर से रङ्ग छोड दो, गुलाल छोड दो, मेरे हाथ क्यो लगाते हो।"

शीतलाप्रसाद—"दूर से रङ्ग छोड दूं! मैं कोई अछूत हूं क्या!"

श्यामा—"यह मै नही कहती, पर मेरे हाथ मत लगाओ"

शीतलाप्रसाद ने इस बार श्यामा की गर्दन मे हाथ डाल ही दिया, श्यामा एक हल्की चीत्कार के साथ अलग होगई।

शीतलाप्रसाद "बोला—तो तुम सीधी तरह होली न खेलोगी।"

श्यामा कुछ सोच कर बोली—तो मै भी तुम्हारे गुलाल मलूंगी।"

शीतलाप्रसाद प्रसन्न मुख होकर बोला-"हां, हां, शौक से। एक बार नही दस बार, सौ बार।"

श्यामा—"अच्छा ठहरो मैं गुलाल ले आऊ।"

शीतलाप्रसाद हँस कर बोला—तो यह कहो, तुमने भी होली खेलने की तैयारी कर रक्खी है, मुझे व्यर्थ ही गीदड—भपकियां दिखाती थी। पर मै ऐसा बच्चा नही हूँ जो उनसे डर जाता।"

श्यामा कोठरी के भीतर घुस गई। कुछ क्षणो के पश्चात अपना दाहिना हाथ धोती के आचल मे छिपाये हुए निकली।

शीतला प्रसाद ने कहा—"अब आज्ञा है।"

श्यामा ने कहा—"शीतलाप्रसाद अब भी मान जाओ तो अच्छा है, मेरे साथ होली खेलना सहज नही।"

शीतलाप्रसाद—"अब बहुत नखरे तो बघारो नही। मै सब समझता हूँ।"

श्यामा—"समझते होते तो इतनी हठ न करते।"

शीतला प्रसाद यह कहते हुए आगे बढा—"मेरी हठ तो आज तुम्हे रखनी ही पडेगी उसने श्यामा की गर्दन मे बाह डाल दी और उसके वक्ष-स्थल से अपना वक्ष-स्थल मिलाने की चेष्टा करते हुए गुलाल

वाला हाथ उसके मुख की ओर बढाया हठात् श्यामा का दाहिना हाथ ऊपर उठकर शीतलाप्रसाद के वक्ष-स्थल पर गिरा। शीतलाप्रसाद एक चीत्कार मार कर अलग हो गया। उसका दाहिना हाथ उसकी छाती पर रक्खा हुआ था। हाथ के नीचे उसका वस्त्र लाल रग गया था, क्रमश वह लाली नीचे फैल रही थी

शीतलाप्रसाद ने कष्ट के साथ कहा'श्यामा, यह तुमने क्या किया ?"

श्यामा—"यह मेरी होली है, हिन्दू नारिया पापियो के साथ इसी प्रकार होली खेलती है। अब समझे ? देखो मेरा रग कितना गहरा है, तुम्हारे श्वेत कपडे पर वह कितना भला मालूम होता है। हाँ, अब तुम अपनी पिचकारी मुझ पर छोड़ो, गुलाल मलो।"

श्यामा का मोहन रूप इस समय साक्षात् चण्डी का रूप हो रहा था, उसका विकट हास्य हृदय मे भय उत्पन्न करता था। शीतलाप्रसाद को ज्ञात हुआ कि मृत्यु उसके सम्मुख खडी बिकट हास्य करके उसे अपनी ओर बुला रही है। शीतलाप्रसाद आँखो पर हाथ रखके भाग खड़ा हुआ।

* * * *

शीतलाप्रसाद के घाव हल्का लगा था। शीतलाप्रसाद अच्छा हो गया। किसी को भी कुछ पता न लगा कि शीतलाप्रसाद के घाव लगने का असली कारण क्या था। शीतलाप्रसाद ने यह कह दिया था कि वह ठोकर खाकर गिर पडा, भूमि पर एक टूटी बोतल पड़ी थी वह उसकी छाती मे लग गई।

स्वस्थ होने के कई दिन पश्चात् एक दिन शीतलाप्रसाद श्यामा के पास पहुँचा। श्यामा ने उसे देखते ही पूछा—"क्यो, क्या फिर होली खेलने की इच्छा है ?" शीतलाप्रसाद ने श्यामा के सामने घुटने टेक दिये और कहा—"भगिनी, तुम्हारे रग ने मेरे हृदय की सारी कालिमा धो दी, मेरा हृदय शुद्ध हो गया। मैंने सच्ची होली तुम्हारे साथ खेली।

ऐसी होली क्या अब कभी खेलने को मिलेगी ! तुम्हारे जैसा रग कहा मिलेगा ! कलुषित आत्माओ के लिये ऐसे ही रग की आवश्यकता है। उस रग ने वस्त्र ही नही हृदय को भी रग दिया।

श्यामा—"शीतलाप्रसाद, वह हिन्दू विधवा का रग था। हिंदू विधवाएँ उसी रग से होली खेलती हैं।"

शीतलाप्रसाद ने अपना मस्तक श्यामा के चरणो पर रख दिया।





विजय



(१)

विजयदशमी की तैयारियाँ हो रही थी। राज-कर्मचारी बहुत व्यस्त थे। राज-परिवार क्षत्री था अतएव राज्य मे विजयदशमी का त्योहार सबसे बड़ा त्योहार माना जाता था और इस अवसर बहुत बड़ा उत्सव मनाया जाता था जिसमे कि राजा तथा प्रजा दोनों बडे उत्साह तथा उल्लास के साथ भाग लेते थे। विजयदशमी वाले दिन कुछ भैसो का वध किया जाता था, और वह इस प्रकार कि राज-परिवार तथा सर-दारो के वार युवक ही इन भैसो का सिर काटते थे। जो व्यक्ति जितने ही कम वारो मे सिर काटने मे सफल होता था, वह उतना ही बल-वान समझा जाता था। जो केवल एक बार मे भैसे का सिर काट डालता था, वह राजा की ओर से पुरस्कृत होता था।

राज-कार्यालय के विशाल भवन के एक भाग के सामने आठ-दस भैसे एकत्र थे। एक उच्च राज-कर्मचारी उनका निरीक्षण कर रहा

था। निरीक्षण करने के पश्चात उसने भैंसो को ले जाने की आज्ञा दी और भवन के अन्दर अपने स्थान पर लौटकर उसने अपने साथ के आदमी से कहा—"इनमें राजकुमार के लिये कोई भैंसा अभी मुझे नही जँचा।"

साथ के आदमी ने पूछा—"आपका तात्पर्य क्या है? ये छोटे हैं या बडे?"

कुछ आश्चर्य पूर्ण दृष्टि से साथी की ओर देखकर राज-कर्मचारी ने कहा—"राजकुमारो के लिये और छोटा भैंसा!" उनका यह पहला प्रदर्शन होगा इसलिये जरा मजबूत और बडा जानवर होना चाहिए।"

"—हाँ, परन्तु इतना बड़ा भी नही जिसे राजकुमार एक ही बार मे न काट सके, क्योकि राजकुमार का विफल होना कदाचित आप भी पसन्द न करेंगे।"

राज कर्मचारी ने व्यग्यपूर्वक उत्तर दिया—"परन्तु यदि छोटा और कमजोर जानवर उन्होने एक बार में काट भी दिया तो उससे उनका कुछ अधिक गौरव नही बढेगा।"

—"यह भी आपका कहना ठीक है। इसीलिये मेरा निवेदन यह है कि मझोले दर्जे का जानवर हो, न बहुत बडा, न बहुत छोटा।"

—"कोई युक्ति ऐसी हो सकती है कि देखने मे जानवर बडा न हो परन्तु उसकी गर्दन बडे जानवर की तरह मजबूत और सख्त हो।"

'यह तो बहुत मामूली बात है, कोई गाडी का चला हुआ जानवर हो तो जो बात आप चाहते हैं वह हो जायगी। गाड़ी मे चले हुए जानवर की गर्दन बहुत सख्त हो जाती है और जो गाडी में नही जोते जाते उनकी गर्दन मुलायम होती है देखने मे चाहे वे बडे हो।"

—"मेरा भी ऐसा ही खयाल है। तभी मैंने तुमसे पूछा।"

"दोनो बातें हो सकती हैं बडा जानवर गर्दन मुलायम और छोटा जानवर गर्दन सख्त। आप जैसा चाहें वैसा बता दें।"

—"मैं बडे असमंजस मे पडा हूँ। तुम अपने आदमी हो इससे बताता हूँ किसी दूसरे से इसका जिक्र मत करना। बड़ी महारानी बड़े राजकुमार की माता ने मुझसे यह कहलवाया है कि ऐसा प्रबन्ध किया जाय जिससे उनका राजकुमार सफल हो जाय। छोटी महाराणी ने इच्छा प्रकट की है कि ऐसा प्रबन्ध किया जाय जिससे कि बड़े राजकुमार असफल हो और छोटा राजकुमार सफल हो जाय। अब मै क्या करूँ यह समझ मे नही आता।"

—"बडी महाराणी की इच्छा केवल अपने राजकुमार को सफल देखने की है। परन्तु, छोटी महाराणी की इच्छा केवल अपने पुत्र को सफल देखने की ही नही वरन बडे राजकुमार को असफल देखने की भी है।"

"—हाँ।'

—"यह जरा सी कठिनाई है। मेरी समझ मे आप दोनो की सफलता के लिये प्रयत्न करें। उत्तम और निरापद मार्ग यही है—आगे जैसी आपकी इच्छा।"

"मेरा भी यही विचार है। दोनो ही सफल हो यह अधिक अच्छा है। बडी महाराणी की भी इच्छा पूर्ण होगी और छोटी महाराणी की भी इतनी इच्छा कि उनका पुत्र सफल हो, पूर्ण हो जायगी। यही ठीक है। मेरे लिये दोनो बराबर हैं।"

—"आपका विचार बिलकुल ठीक है।"

—"तो ऐसे भैंसे होना चाहियें जो औसत दर्जे के हो लेकिन उनकी गर्दन सख्त न हो—मुलायम हो।"

—"मुलायम ही होगी और तरकीब से और अधिक मुलायम कर दी जायगी।"

—"वह कैसे ?"

—"ऐसी चीजे हैं जिनके मालिश करने से गर्दन बहुत मुलायम हो

जाती हैं।"

—"तो बस ऐसा ही प्रबन्ध करो।"

(२)

राज व्यायाम-शाला से दो युवक जिनकी वयस लगभग बराबर ही थी, हँसते हुए निकले। इनमे एक बडा राजकुमार था और एक छोटा। बड़ा राजकुमार बडी महाराणी से था और छोटा छोटी से। दोनो की वयस मे केवल छ मास का अन्तर था। बडा राजकुमार छोटे राजकुमार से केवल छ महीने बडा था। बडे की वयस २३ वर्ष की थी। दोनो समान रूप से हृष्ट-पुष्ट तथा व्यायाम गठित शरीर के थे। उनके साथ एक यूरोपियन था। यह भी काफी बलवान तथा देखने मे स्पेनिश पहलवान सा मालूम होता था, यह इन दोनो का व्यायाम-शिक्षक था। तीनो व्यक्ति यूरोपियन ढङ्ग के व्यायाम के समय के रेशमी कपडे पहने हुये थे। दोनो राजकुमार पसीने मे भीगे हुए थे और तौलियो से अपना बदन पोछ रहे थे। इसी समय एक बेरा एक चाँदी की ट्रे (कश्ती) मे तीन चाँदी के ग्लास रक्खे हुए लाया। एक-एक ग्लास तीनो ने लिया और धीरे-धीरे पीने लगे।

शिक्षक ने कहा—"मेरे खयाल से अब आप दोनो दशहरे के लिये तैयार हैं?"

—"मुझे तो अपने ऊपर पूरा भरोसा है कि मैं किसी भी भैंसे की गर्दन एक वार मे काट सकता हूँ।" छोटे राजकुमार ने कहा।

"यदि आपको ऐसा भरोसा है तो आपके बडे भाई को भी होना चाहिए।" यह कहकर शिक्षक ने बडे राजकुमार की ओर देखा।

—"भरोसा तो मुझे भी है परन्तु मैं इस काम को अच्छा नही समझता। बल प्रदर्शन का यह ढग मुझे पसन्द नही।"

—"आपने मेरे मन की बात कही। यह ढग बड़ा हृदय-हीन पाश-

विक है।" शिक्षक ने कहा।

छोटा राजकुमार बोल उठा—"स्पेन के सांडो और मनुष्यो की लडाई जिसमे आदमी सांड को तलवार से मारता है क्या कम हृदय-हीन है?"

—"नही!" वह भी हृदयहीन है। खास स्पेन मे ऐसे लोग हैं जो उसे बिल्कुल अच्छा नही समझते—यद्यपि वह उनका राष्ट्रीय खेल है।'

—"यह भी तो हमारा—अर्थात क्षत्री राजवंशो का राष्ट्रीय खेल है।"

—"बेशक! यह मै जानता हूँ। परन्तु इतना तो आपको मानना ही पडेगा कि है बडा पाशविक।"

—"यदि मांस खाने के लिए जानवरो का वध करने मे पाशविकता है तो इसमे भी है—अन्यथा इसमे भी नही है।"

"खैर जी, यह अपना अपना दृष्टिकोण है इस पर बहस करना व्यर्थ है।" बडे राजकुमार ने अपना खाली ग्लास ट्रे पर रखते हुए कहा।

छोटे राजकुमार ने भी अपना खाली ग्लास ट्रे पर रख दिया। इसके पश्चात वह मुँह पोंछ कर बोला—'तो क्या आप इस हृदय-हीन खेल मे भाग न लेंगे।"

—"यदि मै स्वतन्त्र होता तो कदापि न लेता पर मै स्वतन्त्र नही हूँ, इसलिए सम्भव है भाग लेना पडे, परन्तु मै प्रयत्न इसी बात का करूँगा कि न लेना पडे।"

(३)

विजयदशमी का दिन था। राजमहल के निकट ही एक खुली जगह पर उपयुक्त प्रदर्शन के लिए आयोजन किया गया। एक ओर राजपरिवार तथा सर्दारो के बैठने के लिए स्थान बनाया गया था और दूसरी ओर तमाशा देखने वालो के लिए। बीच मे महाराज थे—उनके

बाँई ओर बडे राजकुमार और उनके पश्चात छोटे राजकुमार तत्पश्चात राजपरिवार के अन्य लोग। महाराज के दाहिनी ओर राज्य के सर्दार लोग बैठे थे-पीछे राज-कर्म्मचारी। एक ओर चिकें पडी हुई थी जिनके पीछे राजपरिवार की स्त्रियाँ थी।

खुले स्थान के एक कोने मे दस बारह भैसे बँधे हुए थे। महाराज की आज्ञा होते ही पहले कुछ लोगो ने कसरत के खेल दिखाये। इसके पश्चात पहले कुछ सर्दारो ने भैंसो का वध किया, पर एक बार मे कोई भी भैसे का सिर नही काट सका। किसी ने तीन बार मे किसी ने चार बार मे। इनका खेल देख कर लोग खूब हस रहे थे और तालियाँ बजा रहे थे। बडे राजकुमार गम्भीर बने हुए बैठे थे, उनके माथे पर सिकुडने थी, जिससे पता लगता था कि उन्हे यह सब खेल अच्छा नही लग रहा है। छोटा राजकुमार खूब प्रसन्नचित्त तथा उमग में भरा हुआ था और लोगो के एक बार मे भैंसे का सिर काटने के हास्यास्पद प्रयत्न को देख कर खूब हँस रहा था।

सहसा सब ओर सन्नाटा छा गया। महाराज ने छोटे राजकुमार की ओर देखकर किञ्चित मुस्कराते हुए कहा—"अब तुम्हारी बारी है, होशियार हो जाओ।"

राजकुमार तुरन्त उठ खडा हुआ। उसका मुख उत्तेजना के मारे तमतमा रहा था। महाराज को प्रणाम करके वह अखाडे मे इस प्रकार गया जैसे कोई सिह शिकार की ओर जाता है। एक सेवक चार पाँच तलवारें और खाण्डे लिये हुए सामने पहुँचा। उसी समय दो आदमी एक भैसे को, दो रस्सियो के सहारे जो उसके दोनो सींगों मे बँधी हुई थी, पकड़े हुए लाये।

राजकुमार ने एक बार ध्यान पूर्वक भैंसे को देखा तत्पश्चात एक खाण्डा चुन कर निकाल लिया। भैसे को जो आदमी पकडे हुए थे वे दोनों ओर से रस्सी तान कर खडे हो गये। भैसे का सिर किञ्चित

झुक गया। राजकुमार ने खाण्डे को हाथ मे तोला, भैसे की गर्दन को देखा। भैसा चुपचाप खडा था। उसकी साँस जोर जोर से चल रही थी और कभी कभी वह सिर उठाने का विफल प्रयत्न करता था।

राजकुमार भैसे के पास पहुँचे। उन्होने खाण्डे को दोनो हाथो से मजबूती के साथ पकडा और फुरती से उसके एक ही वार से भैसे का सिर अलग कर दिया।

अहा हा ! वाह वाह ! की चीत्कार से आकाश गूँज गया। तमाशाई लोग खुशी के मारे टोपियाँ और पगडियाँ उछालने और राजकुमार की जयध्वनि करने लगे।

राजकुमार ने खाण्डा भूमि पर फेंक दिया और वह दौड कर ऊपर आया। आते ही उसने पिता के चरण छुए। इसी समय एक व्यक्ति एक पात्र मे मारे गये भैसे का थोडा रक्त लाया। महाराज ने उस रक्त का टीका राजकुमार के मस्तक पर लगाया और तत्पश्चात पीठ ठोकी। राजकुमार प्रसन्नता से पुलकित होता हुआ अन्दर स्त्रियो मे चला गया।

इसके पश्चात महाराज ने बडे राजकुमार की ओर देख कर कहा—"अब तुम्हारी बारी है। राजकुमार का मुख पीला पड गया। उसने खडे होकर महाराज के सामने मस्तक झुकाया तत्पश्चात कहा,"पिता जी, यदि आप मुझे इस कार्य से माफी दे दे तो मुझे हार्दिक प्रसन्नता होगी।"

महाराज के मुख पर विस्मय दौड गया। उन्होने पूछा—"क्यो ?"

—"मुझे यह कार्य पसन्द नही।"

"परन्तु क्षत्रियो का तो यह जातीय कार्य है।"

—"था, परन्तु अब नही है।"

—"यह कैसे ?"

—"यह कार्य उस समय ठीक था जब शत्रु को जीतने के लिए केवल तलवार और भुजबल की ही आवश्यकता पड़ती थी। उस समय

इसका अभ्यास और प्रदर्शन दोनो ही उपयुक्त थे परन्तु आजकल जब कि बन्दूको, मशीन-गनो, बमो का युग है, जब कि केवल तलवार और भुज-बल से कोई भी शत्रु नही जाती जा सकता, जब कि एक कमजोर व्यक्ति भी एक बडे से बडे बलवान और तलवार चलाने मे निपुण व्यक्ति को एक क्षण मे कुत्ते की मौत मार सकता है तब इस बल-प्रदर्शन का क्या अर्थ है—

—"इस बल प्रदर्शन का अर्थ है हमारा क्षत्रियपन और क्षत्रियपन की शान।"

—"वह भी ठीक नही है पिता जी! जब हम लोग स्वयं पराये अधीन है तब हमारा क्षत्रियपन और क्षत्रियपन की शान कहा रही? जब हमारा यह भुजबल और खड्ग कौशल हमे परवशता से नही छुड़ा सकता, तब यह सब क्या है? केवल यही न कि इन मूक जानवरो को कसाई की तरह काट कर हम अपने क्षत्रियत्व पर गर्व करते है, अपने भुजबल पर घमड करते हैं—और इस प्रकार अपने को धोखा देकर थोडी देर के लिए मूर्खों के स्वर्ग मे विचरण कर लेते हैं। इससे अधिक इसकी और कौन सी सार्थकता है?"

महाराज के मुख पर लज्जा के चिन्ह प्रस्फुटित हुए। वह गम्भीर होकर विचार करने लगे। राजकुमार चुपचाप महाराज की आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगा। थोडी देर तक विचार करने के पश्चात महाराज ने अपने बाई ओर बैठे हुए एक वृद्ध सरदार से धीरे-धीरे कुछ बातें की। इसके पश्चात उन्होने राजकुमार से कहा—"तुम्हारा कथन ठीक हो सकता है, परन्तु अब तो यह आयोजन हो ही चुका है अब इसमे भाग न लेना अनुचित होगा। तुमने पहले से यह बात क्यो न कही?"

—"मैंने माता जी से कही थी, आप से कहने का मेरा साहस नही हुआ। माता जी ने मेरी बात सुनी नही अब इस समय इस दृश्य को देख कर मेरा विचार इतना दृढ़ हो गया कि मुझे आपसे निवेदन

करने का भी साहस हो आया।"

—"परन्तु अब हो क्या सकता है। अब तो यह खेल खेलना पडेगा।"

"परन्तु आगे के लिए ?"

"विचार किया जायगा।"

मेरा प्रस्ताव यह है कि अब आगे से मल्लो की कुश्तियाँ हो, निशानाबाजी के प्रदर्शन हो, तथा व्यायाम की कसरतें हो—ये सब बाते हो, और यह रक्तपात और हत्या का दृश्य बन्द कर दिया जावे। यदि पिता जी ऐसा करने का वचन दे तो मै इस बार इस घृणित कार्य में भी भाग ले सकता हूँ।"

—"स्वीकार है। मेरा भी चित इस रक्तपात से घबड़ा गया है। अब भविष्य मे ऐसा कभी न किया जायगा—मै वचन देता हूँ। "इतना सुनते ही राजकुमार का मुख खिल उठा। वह तुरन्त महाराज को प्रणाम करके अखाडे में आया। पूर्वानुसार राजकुमार के सामने खाण्डे और तलवारो का गड्ड लाया गया। राजकुमार ने एक पतली लम्बी तलवार चुनी। भैसा भी पूर्ववत लाया गया। राजकुमार ने भैसे को देख कर कहा—घबरा नही, तेरी हत्या नही हो रही है, बलिदान हो रहा है। बलिदान कभी व्यर्थ नही जाता। तेरा बलिदान आगे के लिए तेरे जैसे मूक प्राणियो की यह हत्या बन्द कर देगा इसलिए तेरी हत्या सार्थक है।" यह कह कर राजकुमार ने एक ही हाथ से तलवार का ऐसा वार किया कि भैसे का सिर धड से अलग हो गया।

एक बार पुनः लोगो की चीत्कार से आकाश गूँज गया। इस बार लोग बड़ी देर तक चिल्लाते और उछलते रहे।

अखाडे मे राजकुमार हाथ मे तलवार लिये तना हुआ खड़ा था। उसके मुख से प्रसन्नता की ज्योति सी निकल रही थी और उसके हृदय मे कोई कह रहा था कि—आज तुम्हारी सच्ची विजय-दशमी और सच्ची विजय हुई।





कृतज्ञता



संध्या के चार बज रहे थे। इसी समय एक मोटर कार ग्रीष्मकालीन लू तथा धूल को चीरती हुई तेजी के साथ तप्त सडक पर चली जा रही थी। कार के भीतर दो व्यक्ति बैठे हुए थे। इनमे से एक तो वृद्ध था—अवस्था साठ के लगभग, दूसरा जवान था—अवस्था पैंतीस के लगभग, अगली सीट पर ड्राइवर के बगल मे एक दूसरा व्यक्ति, जो नौकर था, बैठा हुआ था। सहसा वृद्ध बोला—"बेट्टे, थोडा पाणी! ओफ कितनी गर्म हवा है।" जवान व्यक्ति ने थर्मस फ्लास्क उठाते हुये कहा—"मैने तो तुम्हे मने किया था पर तम न मान्ने।"

"चलो, कोई डर नी। अब तो नेडे पहुंच गये। क्यू भई मिट्ठुए अब कतेक दूर रह गया।" वृद्ध ने मेरठी भाषा मे ड्रायवर से पूछा।

"अजी बस पहुँच लिये, कोई चार मील होर (और) चलना है।"

"बस!" वृद्ध ने 'सकार' पर जोर देकर कहा।

"होर क्या!" जवान व्यक्ति ने थर्मस से ग्लास मे पानी भरके वृद्ध

को देते हुए कहा। "अजी यू समझ लो—मेरठ से पन्तालीस (पैतालीस) मील है, मुजफ्फरनगर जिला मे। ढाई घन्टे चलतो हो गये। ढाई घटे मे क्या चालीस मील भी नीआये।"

वृद्ध ने ग्लास खाली करके वापस करते हुए कहा—"हाँ, इतना क्यू नी आये होंगे ?"

जवान व्यक्ति ने स्वय भी पानी पीया। तत्पश्चात उसने सिगरेट केश निकाला और वृद्ध से पूछा—"सिगरेट पियो ?"

"बस जी ! गर्मी मे सिगरेट सोहरी (ससुरी) बुरी लगे।"

"जवान ने एक सिगरेट निकाल कर मुह मे लगाते हुए कहा—"बुरी लगे या भली सोहरी तलब तो मिट जा (जाती) है।"

"मैं ऐसी तलब के पास नी फटकरण देत्ता।" इसी समय ड्राईवर बोल उठा—"लो जी, आगया। बस यो (यह) ही गाम है।"

दो मिनट पश्चात सडक के किनारे ग्राम के सामने एक कार रुक गई।

"किसी से पूछरगा चाहिये" वृद्ध ने कहा।

"जा पण्डत, तू पूछ के आ।"

"क्या नाम हैं, नाम तो मै भूल गया।"

"दुरो ! (दूर हो) कन्टो जाटरणी नाम है।"

"हाँ जी हाँ ! इब (अब) आया !"

यह कहकर 'पण्डत' सडक से उतर कर गाँव मे प्रविष्ट हो गया। कुछ देर बाद वृद्ध बोला—"पता नी गाम में है कि नी !"

"इभी सब पता लगा जा है।"

वीस मिनट मे 'पण्डत' वापस आया। जवान व्यक्ति ने कुछ दूर से ही पूछा।

"मिली ?"

"हाँ जी मिलती क्यू ना ? चलो तुम्है वह बुलावे। अजी बड़े मिजाज़

हैं सोहरी के।"

"लो इब भी मिजाज न होगे। कलक्टर की माँ बणी बैट्ठी सोहरी।"

"अजी घर भी बडा ठाठदार बणवा रक्खा। ऐसा घर तो गाम मे किसी का भी नी।"

"अजी उसे क्या कमी है।" जवान व्यक्ति ने कहा।

इस प्रकार की बाते करते हुए दोनो व्यक्ति कार से उतरे। दोनो ने अपने अपने छाते खोल लिये। 'पण्डत' आगे आगे चला। गाँव के धूलाकीर्ण मार्ग से, जिसमे कही गोबर जमा था, कही सुअर फिर रहे थे, ये लोग एक मकान के सामने पहुचे। यह मकान पक्का तथा प्लास्टर हुआ था। मकान के आगे एक तरफ एक बैलखाना था जिसमे एक बहली तथा एक रथ खडा हुआ था।

इसमे चार बडे-बडे तथा पुष्ट बैल बँधे हुए थे। बीच मे पक्का चबूतरा था। चबूतरे के बीच से घर के अन्दर जाने का रास्ता था। इस बरामदे मे एक तख्त पडा हुआ था। तख्त के पास ही एक चार-पाई पर एक बूढा जिसकी वयस सत्तर के लगभग होगी बैठा हुक्का पी रहा था। बूढे के मुख मडल पर झुरिया पडी हुई थी, पर उसका वर्ण ताबे के समान था। तख्त पर सूती गलीचा बिछा था और एक अध-मैला गाव तकिया रक्खा था। बुढ्ढे ने इन तीनो से तख्त की ओर सकेत करके कहा—"आओ जी बेट्ठो।" ये लोग बैठ गये और तख्त पर पडे दो पंखो से हवा करने लगे।

(२)

कुछ देर मौन रह कर वह बोला—"हुक्म करो महराज के काम है?"

"काम तो म्हारा कन्टो से है।"

"मैं कन्टो का मालक (पति) हूँ।"

"अच्छा ! अच्छा ! तब ठीक है।"

"अजी मेरठ के कलक्टर से एक काम करवाना है। म्हारे एक रिश्तेदार को पुलिस ने एक इल्लत मे फाँस लिया। परसो जट साहब के इजलास मे उसकी पेशी है। म्हारा आदमी बिल्कुल वेगुनाह है।"

बुड्ढा हँसने लगा। बिना दाँत के मसूढो का प्रदर्शन करने के पश्चात बोला—"बेगुनाह तो सोरई (सबही) हो है। अपणे आदमी को कोई यूँ नी कहे है कि इसने कुछ करा है।"

"या तो तम ठीक कहो हो चौधरी जी, पर म्हारा आदमी तो सच्चोई बेकसूर है। धरम की बात है, परमात्मा जाणे है।"

"होगा मै यू थोडा ही कहू हूँ कि तम झूठ बोलो हो।" अरी सज्जण की माँ ! कोई लोण्डा-लारा (लडका-वडका) भी नी दिखता।"

इसी समय एक अष्टवर्षीय बालक घर के अन्दर से आया। उसे देख कर बुड्ढा बोला—"अरे सुणियो—जा जरा अपनी दादी ने बाहर भेज दे।"

लडका उल्टे पैर लौट गया। थोडी देर मे एक साठ वर्षीय वृद्धा बाहर आई। पति को देख कर उसने घूंघट माथे पर खिसका लिया और कहा—"के कहो हो ?"

वृद्ध बोला—"सज्जण की माँ ! ये बाबू लोग शहर से आये है, मेरठ से ! इनका कुछ काम है।"

"के काम हैं ?" वृद्धा ने पूछा। इन लोगो ने पूर्वोक्त बात दोहराई। कहने के पश्चात वृद्ध आगन्तुक बोला—"म्हारा यो काम कर दो—जो कहो वह खिदमत करदें।

वृद्ध बोला—"अजी देन लेण की बात तो करो ना। ऐसे कामो मे हम-धेला भी नही लेते। कलक्टर साहब का ये सख्त हुक्म है कि किसी से पैसा लेकर मेरे पास सिफारिस करने मत आइये ! बात यूं है बाबू जी, या मेरी घर वाली इन कलक्टर के बाप के यहाँ 'आया' थी। जब

यह कलक्टर साहब दो महीन्ने के थे तब इनकी माँ मर गई। इनका बाप ऊपर का दूध पिलाने के बहुत खिलाफ था। अब देक्खो राम जी की माया। कलक्टर साहब के पैदा होने के दो अठवारे पीच्छे इसके म्हारा सज्जरण पैदा हुआ। सज्जरण की माँ को भगवान ने अक्कल दे दी। इसने कलक्टर साहब को तो अपना दूध पिलाया और सज्जरण को ऊपर का दूध पिला कर पाला। तब से कलक्टर साहब इससे इतना हिल गये कि इसी को अपनी, माँ समझरण लगे। बस तब से यह देख लो माँ ही की तरियो (तरह) माने हैं। फिर विलायत चले गये वहाँ से कलक्टर हो आये। अब पचास रुपया महीना देबे है, और जब कभी या वैसे चली जा है तब सौ दो सौ रुपये और कपडे ले आवे है। सिफारिस भी इसी की मान्ने है, सो तो वह दुनिया की नी मानके देत्ता।

"खैर तुम हमारा तो काम करवा दो बडी मेहरबानी होगी।"

"क्यू सज्जरण की माँ, बोल क्या कहे है ?"

"जो तुम कहो।"

"हो सके तो करवा दे। पेसी कब की बताई ?"

"परसों है।"

"तो कल चली जाऊँगी।" सज्जन की माँ बोलीं।

"तो कल हम किस बखत मोटर भेजे।

"बस दस ग्यारह बजे तक आजावे। खाणा—खूणा खाकर चली जायगी।"

अच्छी बात है त्हारी बडी मेहरबान्नी है।"

"ये लोग उठकर चलने लगे। वृद्ध ने पूछा—"कुछ पाणी-पूणी मँगवाऊँ ?"

"पानी तो हमारे साथ मे है, ये देखो बोतल।"

"कुछ दूध-दाध ?"

"अजी बस त्हारी इतनी ही मेहरवान्नी बहुत है।"

ये कह कर ये लोग चल दिये ।

(२)

दूसरे दिन सँध्या समय जब कि मेरठ के कलक्टर तथा॰मजिस्ट्रेट मि॰—अपने बंगले के लान पर कुर्सी-मेज लगाये बैठे थे । सज्जन की मा एक ताँगे से बँगले के फाटक पर उतरी । इस समय वह लँहगा इत्यादि नहीं पहने थी वरन् साड़ी, ब्लाउज तथा पैरो मे चप्पल से सुसज्जित थी । वह लान की ओर बढी । कलक्टर साहब उसकी ओर देखते रहे । चपरासी लोग सज्जन की माँ को देख कर दौड पडे । इसी समय वह कलक्टर साहब के निकट पहुँच गई ।

कलक्टर साहब खड़े हो गये और बोले "हलो—मदर !"

"जाटनी कुर्सी पर बैठ गई । कलक्टर साहब ने हिन्दुस्तानी मे पूछा—"खब खैरो आफियत ?"

"हाँ बेटा ! सब राम जी की दया है ।"

कुछ देर दोनो मौन बैठे रहे । सहसा कलक्टर साहब ने पुकारा—"बेरा !"

"हुजूर ! कह कर बेरा दौडा ।

"मदर के लिये आइस क्रीम लाओ ।" बेरा चला गया ।

"मैं एक बडे ज़रूरी काम से आई हूं ।"

"किसी की सिफारिश ! मदर तुम बहुत परेशान करती हो ।"

"तुझे न परेसान करूँ तो किसे करूँ बेट्टे ? तेरी ही बदौलत लोग मुझे पूछते आवें हैं । वैसे कौरा पूछे है ?"

"बोलो क्या बात है ?"

जाटनी ने एक कागज निकाल कर धर दिया और बोली—"कल जट साहब के यहाँ पेशी है । इसे छुड़वादे, बिचारा बिल्कुल बेकसूर है ।"

कलक्टर साहब ने कागज देख कर कहा—"तुम ने अच्छी तरह

समझ लिया है बेकसूर है ?"

"हाँ बेट्टे बिल्कुल बेकसूर है।"

"आल राइट मदर ! छोड़ दिया जायगा। बस ?"

"बस बेट्टे ! भगवान तेरी हजार बरस की उमर करे और तुझे लाट बणाये मेरी आँखे तुझ को देख के ठडी हो जाती है।"

इस समय बेरा आइस क्रीम का ग्लास लेकर आगया। जाटनी आइस क्रीम पीने लगी।

कलक्टर साहब बेरा से बोले—"देखो मदर के लिए खाना बनवाओ। क्या खाओगी ?"

जाटनी बोली, "जो बण जायगा खालूँगी।"

कलक्टर साहब बोले—"बढिया खाना बनवाओ और एक पलग निकलवा कर लान पर डलवाओ, रात को सोने के लिए। मेम साहब को बोलो मदर आई हैं।"

बेरा के जाने के पश्चात कुछ देर मे मेम साहब लपकती हुई आई और "ओ मदर।" कह कर वृद्धा से चिमट गई। वृद्धा ने उसे बड़े प्रेम-पूर्वक गले लगाया।

उपर्युक्त घटना के एक सप्ताह पश्चात वही पार्टी पुन कन्टो जाटनी के घर पहुंची। उनके साथ मे एक नौकर एक तौलिये से ढका एक बड़ा थाल लिये हुए था। वृद्ध से मिल कर इन्होने थाल उसके सामने रक्खा। थाल मे मिठाई तथा एक दोशाला रक्खा था।

वृद्ध ने पूछा—"यो क्या है ?"

"यह त्हारी नजर है चौधरी।"

"अजी राम भजो बाबू जी, यो तो म्हारे लिए गऊ के माँस बराबर है। इसे वापस ले जाओ बाबू ! मैने त्हारे से पहले ही कह दिया था कि ऐसे कामो मे तो हम धेल्ला भी नी लेत्ते। अभी उस दिन सज्जण की माँ त्हारे काम को गई थी। सौ रुपये और कपडा ले आई। म्हारे कमी

किस बात की है।"

"बेशक पर म्हारी नज़र तो कबूल करलो।"

"अच्छा यो दुशाल्ला तो ठा [उठा] लो।"

"क्यू ।"

"बस ठा लो ।"

दुशाला उठा लिया गया। मिठाई बुड्ढे ने उसी समय गाँव के आदमियो को बुला कर बाँट दी। स्वयं उसका एक कण भी नही लिया।

जब ये लोग चले तो रास्ते मे वृद्ध सज्जन बोले—"कितने सच्चे आदमी है ये लोग ।"

'तभी तो कलक्टर साहब इनकी इतनी कदर करे है।"

"ठीक है बिना गुण के कदर नी होत्ती।"



दाँत का दर्द

पाँडे जी वैसे तो सज्जन थे—सौम्य प्रकृति और गम्भीर स्वभाव तो उनका था ही, परन्तु उनमे कुछ बुद्धूपन की भी पुट थी। लोगो को उनकी सूरत देखकर उनसे हसी मजाक करने की इच्छा होती थी। कुछ लोगो की शकल मे यह दोष होता है कि साधारणतया परिहास न करनें वालो का चित्त भी चलायमान हो जाता है। पाँडे जो ऐसे ही लोगो मे से थे। पाँडे जी का एक दुर्भाग्य यह भी था कि जब पाँडे जी चिन्तित अथवा खिन्न हाते थे तभी लोग उनसे अधिक परिहास करते थे। इनमे न पाँडे जी का दोष था और न परिहास करने वालो का—दोष था केबल पाडे जी की अकल का।

सबेरे का समय था। पाँडे जी अपने द्वार के पत्थर पर लौकी सा मुंह लटकाये बैठे थे पाँडे जी की शकल लोगो को निमन्त्रण दे रही थी कि आओ, आज अच्छा मौका है।

एक पडोसी लोटा हाथ मे लिये दूध लेने जा रहा था पाडे जी की

शकल देख कर ठिठुक गया और बोला—"क्या बात है पाँडे जी, आज बहुत गुमसुम बने बैठे हो ?"

पाडे जी ने पडोसी की ओर इस दृष्टि से देखा मानो वह बेचारा कोई चोर या उठाईगीर हो। देखकर मु ह घुमा लिया। कुछ उत्तर न दिया। उसने पुनः प्रश्न किया— 'क्या मामला है ?"

पाँडे जी बोले— 'मामला क्या है, तुम मजे से दूध लाओ जाकर।" पाँडे जी ने कुछ झल्ला कर कहा।

"दूध तो लावेंगे ही परन्तु आपकी हालत कुछ पिलपिली दिखाई पड़ रही है।"

"हालत पिलपिली है तो आह रे।" यह कह कर पाँडे जी ने बाए गाल पर हाथ रख लिया।

"क्या दाँत मे दर्द है?" पडोसी ने पूछा।

"पाँडें जी की मुद्रा एकदम परिवर्तित हो गई। बडे विनम्र तथा दीन भाव से बोले—"हाँ भैया, रात से दर्द है। रात भर पलक से पलक नही लगी।"

इसी समय एक दूसरे महाशय आकर खडे हो गये। पडोसी ने पूछा—"कुछ दवा लगाई ?"

"हाँ, तमाखू दबाई थी, लेकिन कुछ फायदा नही हुआ।"

"किसी डाक्टर को दिखाओ। वह फुरहरी लगा देगा। बस दर्द बन्द हो जायगा।" दूसरे महाशय ने कहा।

"डाक्टर-वैद्य सब ऐसे ही हैं।" पाडे जी ने कहा। इसी समय एक तीसरे महाशम आगये वह बोले—"क्या बात है ?"

पाडे जी का 'मूड' पुन बदला। बोले—"जाओ, अपना काम देखो आकर खड़े हो गये—क्या बात है ! अब सबको बात बताओ।"

पड़ोसी बोल उठा—"इस समय बोलो नही। पाडे जी के दात म दर्द है। रात भर सोये नही है।"

"दवा क्या की ?"

"तमाखू दबाई थी।"

"तमाखू—यह किस बेवक़ूफ ने बताया! यह तो दिन रात तमाखू फाँकते हैं। तमाखू इन्हे फायदा न करेगी। तमाखू उसे फायदा करती है जो तमाखू नही खाता।"

"तब फिर क्या करें ?"

"दाँत उखडवा दें। दात हिलता विलता जरूर होगा—काहे पाँडे जी।"

हाँ भैया, दाढ है। बहुत हिलती है। ठण्डा-गर्म, खट्टा-मीठा सब ससुर लगता है। समझ मे नही आता, क्या खायँ-पियँ। जोर से साँस लेते है तो उस दाढ मे हवा लगती है तो और दर्द होने लगता है—यह मजा देखो।"

"तो बस, दाढ उखडवानी पडेगी। बिना उखड़वाये दर्द न जायगा।"

उखडवायेंगे तो हम सात जन्म नही। अपना दाँत खुद ही उखडवायें—अच्छी कही।" पाडे जी ने कहा।

"कष्ट देती है तो उखडवाना ही ठीक है।"

"उल्लू हो। आँख आजाय तो आँख निकलवा दे, जुकाम हो जाय तो नाक कटवा दे—अच्छी कही!"

"पाँड़े जी, दाँत तो निकल ही जायगा—जब हिलता है तो रहेगा नही, हाँ जब तक रहेगा तब तक कष्ट देगा, इसलिए कष्ट से बचने के लिए उखडवा डालना ही ठीक है।"

"वाह बेटा, यह खूब कही। शरीर तो एक दिन मिटेगा हीं, जब तक रहेगा कष्ट ही देता रहेगा, इसलिए संखिया खाकर सो रहो। किस पाठशाला मे यह सब पढे हो। तुम्हारे जैसे सलाहकार आह रे।"

पाँडे जी ने गाल पर हाथ रख लिया।

पडोसी महोदय बोल उठे—"पाँडे जी, बिना दात निकलवाये दर्द नही जायगा। इतनी बात तो हम भी जानते है।"

यह कह कर वह व्यक्ति चल दिया। उसके साथ साथ अन्य लोग भी चल दिये।

(२)

ग्यारह बजे के लगभग एक सप्त वर्षीय बालक ने पाँडे जी को एक गोली लाकर दी और कहा—"वह बाबू जी जो उधर रहते है, उन्होने भेजी है और कहा है कि इसे दाँत के नीचे खूब जोर से दबा ले। दर्द चला जायगा।"

पाँडे जी ने पूछा—"किस बाबू ने दी है ?" परन्तु लड़के ने कोई उत्तर न दिया। पाँडे जी बोले—"खैर, कोई अपने मुहल्ले का ही होगा।" यह कहकर आपने गोली मुह मे रख ली और उसे पीड़ित दाढ के नीचे जोर से दबा लिया। गोली फूट गई और उसमे से लाल मिर्चा जैसी इतनी तीव्र चरफराहट निकली कि पाँडेजी बिलबिला गये। जल्दी से पम्प के नीचे जाकर कुल्ली की। पँडायन ने पूछा—"क्या हुआ ?"

"न जाने किस ससुरे ने मिर्चे भर कर गोली दे दी।"

"किसने दी ?"

"क्या जाने एक लडका दे गया था।"

"किसी डाक्टर वैद्य की दवा क्यों नही करते ?"

"दवा क्या करूं ? सब यही कहते है कि उखड़वा डालो।"

"ठीक तो कहते है। जब तक दाँत निकल नही जायगा, दर्द नही जायगा।"

"अपने आप निकल जायँ तो निकल जाँय, हम क्यो उखडवायें ?"

"न उखडवाओ तो पड़े पड़े भुगतो। रात भर न अपना सोये, न मुझे सोने दिया। ऐसे कब तक चलेगा ?"

"अच्छा तो तुम एक दिन मे ही ऊब उठी। ईश्वर न करे, यदि मै दस-बीस दिन को पड जाऊँ और तुम्हे सोने को न मिले तो तुम पास भी न फटको। हरे-हरे! शास्त्र ने ठीक ही कहा है—

न सोदरी न जनको जननी न जाया।
नैवात्मजो न चकुल विपुल धन वा॥
सद्दश्यते न किल् कोऽपि सहायको मे।
तत्मात् त्वमेव शरण मम शखपाणे॥

"ससार मे भगवान को छोडकर और कोई किसी का नही है। (गाकर) मतलब के सब यार है बन्दे, मतलब के सब—आह रे, मर गया!"

"तुम से कौन खोपडी लडावे? जैसा मन हो, वैसा करो।"

"सो तो मै करूगा ही। दाँत के मामले में मैं किसी की राय न मानूंगा।"

उस दिन भी पाँडे जी रात भर जागे। अगले दिन इतवार पड़ा। पाँडे जी द्वार पर बैठे थे। छुट्टी का दिन होने के कारण लोग निश्चित भाव से उनके पास आकर बैठ गये। एक बोला—"दर्द कैसा है?"

"दर्द तो वैसा ही है, परन्तु हमारी दशा खराब है। कल रात भी सोने नही पाये।"

"उखड़वा क्यों नही डालते?"

पाँडे जी बोले—"उखड़वाने मे कष्ट बहुत होगा।"

"न पाँडे जी, आप को पता भी न चलेगा।"

एक ने पूछा—"कै दाँत है?"

"पूरी बत्तीसी उखडवाने की ताक मे हो क्या! कै दाँत है, चले वहाँ से!" पाँडेजी बिगड़कर बोले।

दूसरा बोला—"हमे चार दाँत मालूम होते है।"

यह सुन कर लोगो ने अट्टहास किया। अब पाँड़े जी समझे।

बोले—

"अबे, मुझे भी कोई बछड़ा या बैल समझ रक्खा है ? कै दांत हैं ! खैरियत इसी मे है कि चलते-फिरते नजर आओ, नही तो पिट जाओगे ।"

"सो तो दांत के दर्द का क्रोध किसी न किसी पर उतारा ही जायगा ।"

"जाओ भई, तुम लोगो को कोई काम नही है क्या ?"

"आज इतवार है ।"

"तब तो हमारी शामत है । भगवान ही खैर करे ।" पांडेजी बोले ।

"दांत तुम्हे उखडवाना पड़ेगा ।"

"कोई जबर्दस्ती है, नही उखड़वाते ।"

(३)

अन्त को लोगो के समझाने बुझाने और कष्ट की अधिकता के कारण पांडे जी दात उखडवाने के लिए राजी हुए, परन्तु यह शर्त कर ली कि तकलीफ न हो ।

पांडे जी दांत उखडवाने चले तो मुन्नू की मां से बोले—"जाता हूँ मुन्नू की माँ, जिन्दगी है तो फिर आजाऊँगा, एक तो ।"

इतना कह कर पांडे जी रोने लगे । मुन्नू की मा बोली—"तुम न जाने कैसे आदमी हो । जरा सा दांत क्या उखडवाने चले जानो—अब क्या कहूँ ।"

आँखे पोछते हुए बाहर निकले । मुन्नू की तलाश की—"मुन्नू कहाँ है ?"

मुन्नू बोला—"मै आप के साथ ही चल रहा हूँ ।"

"हाँ बेटा, तुम हमारे साथ ही रहो ।"

सब लोग चले । पांडे जी के साथ मुन्नू था । मुहल्ले के तीन-चार बेफिक्रे भी साथ हो लिए थे । रास्ते मे पांडे जी मुन्नू से अपना देना

पावना बताने लगे। एक व्यक्ति बोला—"हमारे दस रुपये भी बता देना।"

"तुम्हारे रुपये कैसे ?"

'हम से उधार लिऐ थे आपने।'

"कब ?"

"अब ऐसी कहोगे ?"

"हिश्त ! बेटा मुन्नू, जितना मैंने बताया हैं, उससे अधिक मुझे किसी का एक पैसा भी नही देना है। इन बदमाशो से सावधान रहना। कोई कुछ कहे, किसी की न मानना।"

"तो क्या अब घर लौटने का इरादा नही है ?" एक ने पूछा।

"तुम लोगो के मारे जब लौटने पाऊँगा तब तो" !"

जब डाक्टर की दुकान निकट आई तो आप एक स्थान पर बैठ गये। साथ वालो ने पूछा—"यहाँ क्यो बैठ गये ?"

"चलते हैं जल्दी क्या है ?"

"हां भई, जितनी देर दुनिया मे रह ले। अच्छी तरह सब चीज देख लो, फिर देखने को मिले या न मिले। कुछ खाओगे ?"

"हाँ, इच्छा तो थी, पर कहाँ मिले ?"

"मिलेगी क्यो नही—बताओ ?"

"वाजरे की रोटी और कुलथी की पनिया !"

"भइ वाह, अन्त समय मन भी चला तो किस पर !"

"हैसियत की बात है। जो खाते रहते है, उसी को मन चलता है। जो चीज कभी नही खाई, उस पर मन कैसे चले !"

"हाँ, हमने कभी काहे को कुछ खाया है ? पर तुम लोग क्यो साथ लगे हुए हो, अपने घर क्यो नही जाते ?" पांडे जी बोले।

"और सुनिये। हम लोग तो इसलिए साथ चल रहे हैं कि भगवान

करे, तुम्हें कुछ हो गया तो तुम्हे घर उठा लावेगे। लेकिन तुम कहते हो कि घर जाओ। नेकी का जमाना नही रहा !"

"क्या कहने है—बडे नेक आदमी हो न—मनाते है कि कुछ हो जाय !"

"यह हमने कब कहा। अब यह कलक भी लगाओगे ?"

"अरे भई, इनकी बात का बुरा न मानो। जिसकी जिन्दगी का कुछ ठीक न हो, उसकी बात का बुरा न मानना चाहिए।"

"अच्छा, अब चलोगे या यही धरे रहोगे ?"

पॉडे जी उठे तो एक बोला—"राम नाम सत्य है !"

यह सुनना था कि पाँडे जी आग हो गये। बोले– "अब मै कदापि न जाऊँगा। कम से कम इन बदमाशो के साथ तो हर्गिज नही जाऊँगा। ये लोग साथ रहे तो मेरी जान का खतरा हैं। बेटा मुन्नू ! इनको भगाओ, तभी मै डाक्टर के यहाँ चलूंगा।"

यह कहकर आप पुन बैठ गये।

अन्त को लोगो के समझाने बुझाने से शात हुए और उठ कर चले। एक आदमी ने आगे बढ कर डाक्टर को पहले ही सब समझा बुझा दिया। पांडे जी के पहुँचते ही डाक्टर ने कहा—"कुछ घबराने की बात नही हैं। अभी सब ठीक हो जायगा।"

"कुछ खटका तो नही, डाक्टर साहब ?"

"बिलकुल नही, आइये।"

पाडे जी की आखो मे आंसू आ गये। साथ वालो से बोले–"भैया, कहा सुना माफ करना। बेटा मुन्नू तुम मेरे साथ रहो।"

डाक्टर ने कुर्सी पर बैठाल कर कहा—"हां तो देखू कौनसा दात है।"

पाडे जी ने बताया। डाक्टर ने पहले उँगली लगा कर टटोला। पाडे जी चिल्लाये—"अरे मर गया डाक्टर साहब !"

"तुम तो बेकार हल्ला मचाते हो। अभी तो मैंने कुछ किया भी नही। हां, ज़रा अच्छी तरह मुंह खोलो।" यह कह कर डाक्टर ने सन्सी उठाई। पाडे जी को यह ससी कसाई की छुरी के समान दिखाई पडी। भय से कांपने लगे। बोले—"जरा एक मिनट ठहर जाइये। कलेजा धड धड कर रहा है।"

"हमे इतनी फुर्सत नही है।" कह कर डाक्टर ने सन्सी मुंह मे घुसेड दी। पाडे जी बकरे की भाति चिल्लाने लगे। डाक्टर साहब ने तुरन्त दात खीच लिया। घर लौटे तो लगे शेखी बघारने—"मैने झट हनुमान जी का ध्यान किया।"

"बकरे की तरह चिल्ला रहे थे या हनुमान जी का ध्यान कर रहे थे।"

"वह कोई और चिल्लाता होगा। डाक्टर के यहां तमाम रोगी थे।"

दूसरे दिन पाडे जी ने अपने हाथ से अपना दात गगा मे छोडा। दात को गगा जी मे फेक कर पाडे जी ने अँगौछे से आँसू पोछे। मुहल्ले का एक आदमी देख रहा था। वह बोला—"क्यो पाडे जी, अपने पिता की अस्थियाँ फैंकी क्या?"

पांड़े जी बोले—"इन बदमाशो के मारे कही चैन नही। हर समय पीछे लगे रहते है।"

यह कह कर स्नान करने चले गये।





वीर-परीक्षा



काबुल की ओर प्रयाण करते हुए महाराजा रणजीतसिंह की सेना ने रावलपिंडी के निकट पडाव डाला। सूर्यास्त से कुछ पूर्व का समय था। महाराजा अपने निजी डेरे के आगे खडे थे—उनके पास हरीसिंह नलवा, सरदार फुलसिंह इत्यादि योद्धा खडे हुए सेना के प्रबन्ध का निरीक्षण कर रहे थे। इसी समय छः सात सैनिक दो सिक्ख युवको को बीच मे लिए हुए महाराज के डेरे की ओर आते दिखाई पडे। हरीसिंह नलवा से महाराज ने पूछा—"क्या बात है ?"

"कोई अपराधी मालूम होते हैं।"

थोडी ही देर मे वे निकट आ गये। महाराज के सन्मुख पहुँच कर सैनिको ने महाराज का अभिवादन किया और वे दोनो युवक चिल्ला उठे—"महाराज की जय ! हरीसिह की जय !"

हरीसिंह ने पूछा—"क्या मामला है ?"

सैनिको मे से एक ने कहा—"ये हुजूर से कुछ अर्ज करना चाहते है।"

उनमे से एक युवक बोला—"हमने बहुत दिनो से सुन रक्खा है कि महाराज रणजीत सिह बडे वीर है, उनका सेनापति हरीसिह नलवा बडा वीर है और वीरो की कद्र करता है। इसलिए हम हुजूर की सेवा मे नौकरी करने के अभिप्राय से आये हैं।"

महाराज चुपचाप उनकी बातें सुन रहे थे। हरीसिह ने कहा—"हमारी सेना मे केवल वीरो को नौकरी मिलती है। जो वीर नही हैं उनके लिये हमारी सेना मे स्थान नही है।"

"हा हम वीर है, हमारी रग रग मे वीरता है, हमारे खून की एक एक बूंद मे वीरता है।"

महाराज रणजीतसिह मुस्करा दिये, परन्तु मौन रहे। हरीसिह ने कहा, "जो वीर होता है वह अपने मुख से अपने को वीर कभी नही कहता।"

युवक निर्भीकता पूर्वक बोला तो कोई भी वीर अपना परिचय देते हुए अपने को कायर नही कहता। हुजूर ने जब हमारा ठीक ठीक परिचय पूछा तो हमे सच सच कहना पडा।

महाराज के मुख पर प्रशंसा सूचक भाव का प्रादुर्भाव हुआ परन्तु वह मौन ही रहे। हरीसिह कुछ अधीर होकर बोला, "तुम दोनो कौन हो?"

"हम दोनो सगे भाई हैं।"

"कहा के रहने वाले हो?"

"-यहां से कोस भर की दूरी पर एक गांव है वही के रहने वाले है।"

"गाव का नाम?"

युवक ने बता दिया।

हरीसिह ने कहा—"हमारे पास रगरूटों के लिए जगह नही है।"

"हम तलवार, भाला, तीरकमान चलाना जानते हैं।"

मारा तो दूसरे का मर धड पर से झूल पडा-दोनो एक साथ ही धराशायी हुए। महाराज स्तब्ध थे। हरीसिंह अवाक् ! अन्य सरदार चकित !

दोनो की लाशें कुछ देर तक तडप कर ठडी हो गई। महाराज के नेत्रो मे आसू छलछला आये। वह आँखे पोछते हुए बोले—"क्यो हरी ! वीरो की परीक्षा लेने का परिणाम देखा ?"हरीसिंह ने सिर झुका लिया, उसके नेत्रों से अश्रुधारा बह रही थी।

महाराजा ने सैनिको से कहा—"इनके गाव मे जाकर पता लगाओ कि इनके घर मे कौन हैं। चुपचाप पता लेकर आओ—यहाँ का हाल किसी को मत बताना।"

सैनिक तुरन्त चल दिए।

\+ + +

महाराजा रणजीतसिंह, हरीसिंह नलवा तथा कुछ अन्य सरदार और सैनिक गाँव के एक कच्चे घर के सन्मुख खडे थे। एक ओर कपड़े से ढके हुए दो युवकों के शव रक्खे थे। महाराज के सन्मुख एक वृद्धा खड़ी आंचल से नेत्रो को पोछ रही थी। नेत्र पोछते हुए उसने महाराज से पूछा कि महाराज ने स्वय पधारने का कष्ट क्यो किया ?

महाराज बोले, ऐसे वीर पुत्रों को जन्म देने वाली माता का दर्शन करके अपना जन्म सफल करने के लिए मै यहां आया हूँ। मां तुम धन्य हो ! ईश्वर करे ऐसी मातायें पजाब के घर घर में हो।

वृद्धा मौन खड़ी रही।

सहसा महाराज घुटनों के बल बैठ गये और वृद्धा के चरण छूकर बोले "मै काबुल पर चढ़ाई करने जा रहा हूँ, मां अपना आशीर्वाद दो कि मेरी यह यात्रा सफल हो।"वृद्धा का मुख तमतमा उठा। उसने सिर ऊंचा करके और अपने पुत्रो के शवो की ओर सकेत करके कहा "जिसके राज्य मे ऐसे बालक उत्पन्न होते हैं वह क्या कभी हार सकता है। जाओ तुम्हारी विजय निश्चित है।"

महाराज उठ खड़े हुए। सहसा वृद्धा बोली—"वह देखो मेरे दोनो लाल मुझ से विदा माग रहे है कहते है कि हम काबुल जा रहे है। वह देखो दोनो जा रहे हैं।"

सब ने वृद्धा के सकेतस्थान की ओर दृष्टि डाली तो देखा कि एक बवण्डर चक्कर खाता हुआ पश्चिम की ओर जा रहा है।



दशहरे का मेला

"सन्तू भाई ! कल चलो शहर का मेला देख आवें।"

जगल की ओर जाते हुए एक अर्द्धवयस्क किसान ने चौपाल मे बैठे हुए अपने समवयस्क व्यक्ति से कहा।

"क्या करोगे चलके, बे-स्वारथ की परेसानी उठाओगे।"

"परेसानी काहे की। यहॉ से रेल मे बैठो, आध घटे मे शहर जा पहुँचो। वहाँ रात को रामलीला देखो और सबेरे गजरदम की गाडी से चल देओ—दस बजे तक घर आजाओ।"

सन्तू भाई कुछ क्षण विचार करके बोले—"कल घर मे भी तो तिवहार है।"

"अरे सो बारह बजे तक घर का तियहार कर लेओ—गाड़ी डेढ बजे जाती हैं।"

"हमी तुम है या कोई और भी चलेगा।"

"पहले हमारी—तुम्हारी मिसकौट हो जाय फिर जिसे चलना होगा चला चलेगा।"

"अच्छा साम को जवाब देंगे।"

"जवाब क्या, बस तैयारी कर लेओ। साल भर का मेला है। अगले साल कौन जाने क्या होगा। आजकल दम-दम का भरोसा नही है। लछमन काका को देख लेओ—चार दिन पहिले अच्छे भले थे आज कहीं निसान नही है।"

"हाँ बिसनू भइया, लछमन काका का तो अचभा ही हो गया। दो दिन मे चटपट हो गये। और हट्टे-कट्टे थे, कमजोर नहीं थे। उमर तो जरूर पचास के पेटे हो गई थी।"

"तो कौन बहुत थी। उनकी अम्माँ तो अभी बैठी है। न हाथ-पैर चले, न सूझ पडे, पर मरने का नाम नही लेती है।"

"कागज नही फटा है। बिना कागज फटे मौत नहीं आती।"

"सो तो ठीक ही है।"

"अच्छा तो साम को मिलेंगे।"

यह कह कर बिसनू भाई चले गये।

बिसनू भाई के चले जाने के थोडी देर बाद एक और व्यक्ति उधर से निकला। यह सन्तू भाई से कम आयु का था। सन्तू भाई उससे बोले—"काहे हो बसन्त! कल सहर चलोगे मेला देखने।"

बसन्त ठिठुक कर बोला—"क्या, जारहे हो?"

"हाँ इरादा तो है। चलो तुम भी देख आओ।"

"तुम जाओगे तो हम भी चले चलेगे।"

"हाँ चलो देख आओ।"

"चले चलेंगे।"

तो पक्की बात रही?"

"हाँ पक्की बात है।" कह कर बसन्त भी अपने रास्ते लगा।

सन्तू पुकार कर बोला—"कल डेढ बजे की गाडी से चलेगे।"

"बहुत ठीक!" कहता हुआ बसन्त आगे बढ़ गया।

थोडी देर पश्चात एक और आदमी निकला। सन्तू ने उसे भी मेले का निमन्त्रण दिया। वह बोला—"क्या करेंगे जाकर मुफ्त मे दो चार रुपये खर्च हो जायँगे।"

"तो कौन घाटा है। आजकल किसान के पास पैसे की कमी नही है, केसर के भाव गेहूँ बिक रहे हैं।"

"वही राम, वही रावन और वही रामलीला। कोई नई चीज हो तो देखें।"

दसहरा तिवहार भी तो पुराना है, फिर काहे मनाते हो?"

"वह बात दूसरी है और चले भी चलते पर कल हमारे यहाँ पाहुन आने वाले हैं।"

"पाहुन! कौन पाहुन है, घर का तिवहार छोड कर तुम्हारे यहाँ आवेंगे।"

"साम को आयँगे, दोपहर को घर मे तिवहार मना लेगे।"

"यह कहो। तब तो तुम्हारा जाना नही हो सकता।"

"हाँ भइया—नही तो चले चलते, कोई कसम थोडे ही खाई है।"

"नाही कसम खाने का कौन काम है।"

इस प्रकार सन्तू भाई ने दो और व्यक्तियो को तैयार कर लिया। अब कुल चार आदमी हो गये। सध्या समय बिसनू भइया के आने पर सन्तू भाई ने कहा—"सहर चलने का विचार पक्का हो गया। बसन्त और मगल भी चलेगे।"

"तो चार आदमी होगये। बड़ी अच्छी बात है। अब मजा रहेगा।"

"हाँ इसी मारे तो हमने उन्हे तैयार किया। दो जनो मे मजा न आता।"

"बडा अच्छा किया। हमने भी दो तीन आदमियो से कहा, पर वह नट गये।"

"जाने देओ। हम चार काफी हैं—ज्यादा भीड-भाड भी ठीक नही। तो कल डेढ बजे वाली से--क्यो ?"

"हाँ वही ठीक रहेगी—घर का तिवहार भी हो जायगा।"

(२)

दूसरे दिन निश्चित समय पर चारो स्टेशन की ओर चले। बिसनू भाई ने सन्तू भइया से पूछा—"तमाखू की थैली ले ली है।"

"हाँ सो तो सबसे पहिले रख ली थी।"

"हमारे पास भी तमाखू की थैली है।" मगल ने कहा।

"अच्छा तो फिर बन जाय।"

चलते-चलते मगल ने तमाखू बनाई। चारो व्यक्तियो ने थोडी-थोड़ी खाई।

"काहे भइया ठहरे का कहाँ डौल होई ?" सन्तू ने बिसनू से तमाखू भरे हुए मुख से पूछा।"

"ठहरै का डौल बहुट है। ढरमसाला है।"

"टो टौन डुइ-चार डिन ठहरै का है।"

"हाँ हो। बारह एक बजे तो रावना जरावा जाई। डुई-टीन घन्टा का मामला रहि जाई—गगा किनारे पड रहेगे।"

स्टेशन पहुँचे तो पता लगा कि गाडी आने मे थोड़ी देर रह गई है। टिकिट बँट रह था। बसन्त टिकिट लेने गया। परन्तु लौट कर बोला—"पन्द्रह आना माँगते हैं।"

"एक टिकिट का ?" बिसनू ने पूछा।

"हाँ कहते हैं गाडी मे जगह नही है।"

"पन्द्रह आना का टिकिट लेने से जगह हो जायगी ?"

"सिकिण्ड-क्लास मे जगह है—उसी का किराया पन्द्रह आना है।"

"तो क्या सलाह है ?"

"इसी मारे हम नही आते थे।" सन्तू ने कहा।

"अरे अब आगये हो तो चलो देखा जायगा।" चारो ने एक-एक रुपया मिला कर टिकिट लिये।

गाड़ी आई। चारो सेकेण्ड क्लास के डिब्बे मे घुसने लगे तो लल-कारे गये—"कहाँ घुसे आते हो।"

"हमारे पास सिकिण्ड का टिकिट है।"

परन्तु जब घुसने न पाये तो फिर भागे। बिसनू एक तीसरे दर्जे मे घुसने लगा। भीड़ बहुत थी। भीतर के आदमी बिसनू को बाहर ढकेल रहे थे। बिसनू बोला—"अरे जरा तुम बाहर से जोर लगाओ—हम गिरे पडते है।"

तीनो ने बिसनू को भीतर धकेलना आरम्भ किया। इस प्रकार बडी कठिनता से चारो अन्दर पहुंच गये, परन्तु बैठने की जगह न थी।

"बडी लूट होने लगी है, रेल मे-सिकिण्ड का टिकिट है, पर खडे होने की भी जगह नही। यह अन्धेर तो देखो।"

"ऊपर काहे चढे बैठते हो।" बिसनू ने एक अन्य व्यक्ति से कहा।

"हम हूँ टिक्कस लीन है।"

"हेह बडे टिक्कस वाले। सिकिण्ड का टिकिट है हमारे पास। हमे तो बैठे की जगह मिली चही।"

"बैठे की काहे का—चरपइया डारिके पौडे की कहो। बडे लाट साहब के नाती है न।"

इस पर कुछ अन्य लोग भी हँस पडे।

"जरा जुबान सँभारि के बात कीन्हेओ—यौ बताये देइत है।"

इसी समय एक व्यक्ति ने बिसनू के पैर पर पैर धर दिया।

"ओह! ओह! दइया रे, पाँय कचर डारयो।"

"देखो खून तो नही निकला?" बसन्त बोला।

"कैसे देखे, पैर ऊपर उठाने की जगह तक तो है नही।"

इसी समय रेल रुकी ! सन्तू द्वार से भिडा हुआ खडा था—झटके से उसका सिर खटाक से द्वार के ऊपरी भाग से टकराया। वह सिर सहलाता हुआ बोला—"बडे जोर से लागगा हो । ऊ हू हू-हू ।"

यह दशहरे का त्योहार मनाया जा रहा था ।

"बडी गर्मी है—प्रान निकले जाते है ।"

"कौनो तरह इस्टेसन आवे तो खैर है ।"

"तमाखू खइहौ—बिस्नू काका ।" बसन्त ने पूछा ।

"हाँ ! हाँ ! बना लेश्रो ।"

"सन्तू काका, थैलिया लावन देश्रो ।"

"श्रा हा हा ! पीछे हटौ, हो, कोहनी मार दीन्हो कोखे माँ ।" मगल बोला ।

"लेश्रो थैली बसन्त ।"

बसन्त ने तमाखू बना कर जो फटफटाई तो लोगो को छीके आने लगी । "यौ का की—आछी ।"

"छीं—बडे खराव आद—छी ।"

"ई लोग तो नाक माँ दम—आछी ।"

ढकेल देश्रो इनका नी—छी ।"

सन्तू तो द्वार के पास ही खडा था, उसे तो आसानी थी, परन्तु शेष तीन द्वार से हट कर खडे थे। इतनी साँस नही थी कि द्वार तक पहुँच कर बाहर थूक दे। कुछ देर तो तमाखू की पीक मुँह मे रोके रहे, परन्तु जब कोई उपाय न देखा तो निगल गये।

इसी समय बसन्त बोला—"अरे सन्तू काका हम तो मरेन ।"

"काहे का भा ?"

"तमाखू लाग गै ! जिव घबडात है—अरे भइया जरा बैठ जान देश्रो ।" यह कह कर उसने एक के कधे पर सिर धर दिया।

"अपने वल खडे रहो जी ! हमारे ऊपर क्यो लदते हो ।"

"तमाखू लाग गई भइया।" दइया रे का करन, परान अस निकरत है।

"तो काहे इतनी ठूँस गये।"

इसी समय शहर का स्टेशन आगया। बड़ी कठिनता से ठेल ठाल धक्कम-धक्का के पश्चात चारो प्लेटफार्म पर उतरे।

सन्तू भाई बोले—"लाओ हमारी थैली।"

"थैली तो जानो डब्बा माँ गिर पड़ी।" यह कह कर बसन्त प्लेटफार्म पर पड़ी हुई बेञ्च पर पसर गया और बोला - "पानी लाओ थोड़ा।"

(३)

जब बसन्त का चित्त कुछ ठीक हुआ तो चारो स्टेशन के बाहर आये। सन्तू बोला, "बड़ा नुकसान हो गया। थैली चली गई।"

"उसमे क्या क्या हुता ?"

"पीतल की चुनौटी, सुपारी, सरौता और तमाखू।"

"राम ! राम ! तब तो बड़ा नुकसान हो गया।" बिसनू ने कहा।

उस समय दिन के ढाई बज चुके थे।

चारो व्यक्ति एक धर्मशाला पहुचे। बिसनू का पैर जख्मी था, सन्तू के सिर मे गोला पड गया था, मगल की कोख दर्द कर रही थी। चारो लेट रहे।

एक घटे पश्चात चारो उठे। बसन्त दौड़ कर दो आने की बर्फी ले आया। उसमे भाँग मिलाकर उसने स्वयं खाई और अपने साथियो को भी खिलाई। उसके पश्चात चारो शौच से निवृत्त हुए।

बसन्त ने पूछा—'खाना-पीना तो मेले से लौट कर होगा।"

"हाँ मुदा ई पूड़ी कहाँ रक्खे।" चारो अपने अपने घर से पूड़ी बाँध कर लाये थे।

"जमादार से पूछो।"

बसन्त जमादार को बुला कर उससे बोला—"भइया, हमारे पास पूड़ी बँधी है घर से लाये है अब मेला देखने जारहे है तो यह पूड़ी कहाँ रक्खें ?"

"हम क्या बतावे। साथ क्यो नही रखते गङ्गा जी तो जाओगे वहीं बैठ कर खा लेना।"

जमादार की यह राय चारो को पसन्द आई, अत· चारो अपनी अपनी पूरियाँ बगल मे दाबे मेला देखने चले। बिसनू कुछ लँगडा कर चल रहा था। मेले मे पहुचे तो बडी भीड थी। कुछ देर इधर-उधर घूम कर आपस मे सलाह की।

"चलो गगा जी हो आवे, वहाँ पूढी खापी कर लौटेंगे। रावना तौ नौ-दस बजे जलेगा।"

यह सलाह करके चारो गगा जी पहुंचे। वहाँ चारो ने भोजन किया। इसके बाद चले।

"नसा बड़े जोर है काका।" बसन्त ने कहा।

"हाँ बहुत नसा है, डगर नही सूझ परत है।"

"आओ पान तो खा लेओ।"

एक तबोली की दुकान पर पान खाये और पुन. आगे बढे।

थोडी दूर आगे बढकर सन्तू बोला—"जरा हम लघुसङ्का कर ले। खाय के बाद लघुसका करा चही।"

"हाँ हो, हमरी हू आदत है।"

अत एक लम्बी दीवार के पास चारो बैठ गये।

उधर से कुछ सिविक गार्ड जा रहे थे। जैसे ही ये लोग उठे—उन्होने चारो को थाम लिया।

"तुमने यहाँ पेशाब क्यो किया, चलो कोतवाली।"

"भइया बड़े जोर लाग रहै-माफ करो।"

"यह कुछ नही कोतवाली चलो।"

"कुछ पान खाने को लै लेग्रो, चीफ साहब!"

"अच्छा दो दो रुपये निकालो।"

"ऐसाभ्न करो। आठ-आठ आना लै लेओ।"

"आठ-आठ आना! हम कुछ न लेगे, कोतवाली चलो तुम लोग।"

अन्त मे चारो ने मिसकौट करके एक-एक रुपया दिया तब छूटे।

सन्तू भाई बोले—"अच्छा मेला देखा। न कुछ खा पाये न ले पाये न मेला देखा और दो तीन रुपये खर्च हो गये। और हाँ—थैली गई घाते मे—तीन रुपये की मालियत वह भी थी।"

मेलें पहुचे! जैसे ही ये लोग पहुचे रावण को आग लगा दी गई और लोग भडभड़ाकर चले। सन्तू बोला—"अरे यहाँ खतम होइगा। कुछ देखौ न पायेन।"

"चलौ अबही सिवाला माँ न जरा होई—वहाँ देर माँ जरत है।"

बिसनू बोला—"हमार पाँव तो सूजि आवा भइया—नस पर पैर पड़ा-हम तौ चलै नही पाइत है।"

"अरे आये हो तो मेला तो देख लेओ।"

"भइया चलै नही पाइत है—का करी। अब हम तो जाब धरम-साले—पौढब जायके।"

"तो अकेले चले जइहौ?"

"दिन होत तो चले जातेन, रात माँ भुलाय जाब। हमैं पहुचाय आओ-फिर चले आओ।"

"तुम चले जाओ बसन्त।"

अरे तो सब जने चलौ, दुई जने रहि जइहै तो का मजा आई।"

"सिवाला न चलिहौ?"

"अरे होइगा-मेला। थकिगे हन, नसौ बडे जोर चढा है। चलौ पौढन चलिकै।"

यह राय सबको पसन्द आई और चारो धर्मशाला चले आये।

दूसरे दिन सबेरे की गाडी से चारो गॉव पहुँचे। सन्नू बिसनू से बोला—"अब जो कबहूँ तुम हमसे मेला देखन का कइहौ तो फौजदारी होइ जाई यौ जाने रहियो।



मुंशी जी की दीवाली



लाला बनारसीदास श्रीवास्तव को दीपावली त्योहार से एक प्रकार की चिढसी थी। उनकी चिढ का कारण था दीपावली का जुआ। दीपावली पर लोग जूआ खेलते हैं। इस कारण बनारसीदास को दीपावली से चिढ थी। वे कहा करते—"न जाने इस त्योहार का ईजाद करने वाला कौन नामाकूल था!" इस बात पर उनसे लोगो ने बहस भी की, लड़ाई-झगडा भी किया, उन्हे समझाया भी, परन्तु लाला बनारसी दास ऐसी खोपडी के आदमी थे कि उनकी समझ मे कोई बात न आई। वह अपना मत इस प्रकार प्रगट करते—"यह त्योहार रामचन्द्र जी के अजुध्या (अयोध्या) लौटने पर उनकी आमद (आगमन) की खुशी मे मनाया गया था। अजुध्या शहर सजाया गया था, रोशनी की गई थी, लोगो ने खूब जश्न किये थे। असली बात तो यह है, मगर किसी नामाकूल ने इसमे जुआ घुसेड़ दिया—बस, उसी दिन से यह त्योहार खराब हो गया।"

कार्तिक बदी दशमी का दिन था। लाला बनारसीदास कचहरी से

वापस आकर अपने मकान के चबूतरे पर हुक्का लिए बैठे थे। वह एक वकील के मुहर्रिर (क्लर्क) थे। इसी समय पडोस के दो-तीन व्यक्ति आकर उनके पास बैठ गये क्योकि आसपास के दस-बारह घरो की बैठक इसी चबूतरे पर लगती थी। एक ने पूछा—"इस साल पोताई-वोताई न कराओगे क्या ?"

"इस साल रंग-वग बडा मँहगा है। खाली दरबाजा पोतबा लेगे बस ! पोताई के रग सिसकोलिन का जो डब्बा पन्द्रह आने का आता था उसके दाम छ रुपये हैं।"

"अजी सिसकोलिन को गोली मारिये—अपना देशी रग पोताइए—क्या सदा सिसकोलिन ही चलता था। ?"

"देखो कल इतवार है। एक राज को बुलवाया है—अगर आ गया तो उससे सलाह करेंगे।"

"तूतिया स पोताइये !" दूसरा बोला।

"तूतिया क्या सस्ता होगा ? हुह।" लाला ने कहा।

"सस्ती तो खैर कोई चीज नही है मगर सिसकोलिन से सस्ता पडेगा।"

"देखो जो होनहार होगा हो जायगा।"

कुछ देर नीरवता छाई रही। सहसा एक व्यक्ति बोल उठा—"मुन्शी जी इस साल जुआ आप भी खेलिए !"

"मैं और जुआ ! क्या गधेपन की बात करते हो। तुम जानते हो कि इस जूए की वजह से ही मुझे इस त्योहार से चिढ है।"

"सो तो मालूम है, मगर इस इरादे से खेलिए कि जितना रुपया आप जीतेंगे वह सब बगाल फण्ड मे भेज देगे।"

"जी नही ! मैं ऐसा बेबकूफ नही हूँ जो बगाल फण्ड के लिए ऐसा काम करूँ जिससे कि मै सख्त खिलाफ रहता हूँ।"

"आप मे देश-भक्ति का माद्दा बिलकुल नही है। देखिये बंगाल

फण्ड के लिए भले-भले घर की लडकियो ने नाच दिखाकर रुपया इक-ट्ठा किया ।"

"किया होगा—लेकिन मुझे नही करना है ।"

"नाम हो जायगा आपका कि अमुक सज्जन ने केवल बंगाल फण्ड मे रुपया देने के लिए अपने सिद्धान्त के विरुद्ध जुआ खेला ।" तीसरे व्यक्ति ने कहा ।

"लेकिन हम जीत ही जायेंगे इसकी जमानत कौन भकुआ करेगा ?" मुन्शी जी धूआँ छोड़ कर बोले ।

"जमानत तो हम नही कर सकते परन्तु इतना कह सकते हैं कि आप जीतेंगे अवश्य ! पहले पहल खेलने वाले सदैव जीतते हैं । क्यों भई; रूपनारायण ?"

रूपनारायण बोला—"हाँ बात तो ऐसी ही है ।"

"खैर हम चाहे जीतें चाहे हारें, मगर हम जुआ नही खेल सकते । यह बात तय है ।"

"बस यही आप मे ऐब है कि आप किसी की बात नही मानते ।"

"जी हाँ । औंधी बात कैसे मान लूँ । कोई ढग की बात कहो तो मान भी लूँ । अच्छा अब जरा फारिग हो ले ।"

यह कह कर मुन्शी जी हुक्का उठा कर अन्दर चले गये । उनके अन्दर जाते ही ये तीनो व्यक्ति आपस मे बाते करने लगे । रूपनारा-यण बोला—"यार महेश इस साल मुन्शी जी को जूआ न खेलाया तो कुछ न किया ।"

"भई मुन्शीजी खेलें-वेलेंगे नही, कोशिश बेकार है । क्यो श्याम लाल ?"

श्यामलाल बोला—"हाँ मुश्किल है । जूए से उन्हे सख्त नफरत है ।"

"बंगाल फण्ड के नाम पर तैयार हो जाये तो कोई आश्चर्य भी नही । इतना तो कहते ही थे कि जीतने की जमानत कौन करेगा ।"

रूपनारायण बोला ।

"तो तुम जमानत कर क्यो नही लेते—देखो खेलते है या नही ।" श्यामलाल ने कहा ।

"अगर तैयार हो गये तो हम तो मुसीबत मे घिर जायेंगे ।"

"अजी कैसी मुसीबत । जीत गये तब तो कुछ कहना ही नही—हार गये तो तुम से क्या लेगे । जूए की भी कोई जमानत होती है ।"

"अदालती आदमी है, इससे डर लगता है । अच्छा सोचेंगे ।"

(२)

धनतेरस का दिन था । रूपनारायण, महेश तथा श्यामलाल ने आवाज दी—'मुन्शी जी, ओ मुन्शी जी !" मुन्शी मानो कुएँ के अन्दर से बोले—"कौन है !"

"कहा है आप ? जरा बाहर तो आइये !"

कुछ देर बाद मुन्शी जी बाहर निकले—एक अँगौछा पहने हुए—शरीर धूल-धूसरित ! बोले—"क्या है ?"

"अरे ! यह आपका हुलिया क्यो बिगडा हुआ है क्या कुआ खोद रहे थे ?"

"कमरे की सफाई कर रहा था ।"

"सफाई ! कैसी सफाई ?" श्यामलाल ने पूछा ।

"गँवार ही रहे ! सफाई कैसी होती है ?"

"तो क्या कमरा पोत रहे थे ?"

"कमरा तो पुत गया—उसमे असबाब लगा रहे थे ।"

'असबाब मे कुछ गर्दो-गुबार के बोरे भी है क्या ?"

"अजीब नामाकूल हो । असबाब मे गर्द भरी हुई होती है कि नही । उसे झाड पोछ कर रख रहे थे ।"

"खैर ! लेकिन यह समय आपने अच्छा चुना । आज धनतेरस है—बाजार नही चलोगे ?"

"धनतेरस है ! हाँ ! हमे खयाल ही नही था। लेकिन हमे तो कुछ खरीदना है नही।"

"वाह सगुन नही करोगे—चलो एक आध कटोरी-वटोरी ही खरीद लाओ।"

"अब ऐसे कैसे चले —नहा लेते तो चलते।"

"तो झट-पट नहा डालो। हम लोग बैठे है।"

"अच्छा तो बैठो—अभी आये पन्द्रह मिनट मे।"

यह कहकर मुन्शी जी पुन अन्दर चले गये।

रूपनारायण बोला—"हमे तो मुन्शी जी को इस साल जुआ खेलाना है।"

"यह अजब सनक सबार है तुम्हे।"

"हाँ फिर सनक हो तो है।"

"हम पाँच-पाँच रुपये की शर्त बदते है—मुंशी जी जुआ कभी नही खेलेगे।"

"अच्छा यही सही ! शर्त पक्की हो गई।"

ये लोग यही वार्तालाप करते रहे। बीस मिनिट मे मुंशी जी बाहर आये। साथ मे उनका सप्तवर्षीय पुत्र भी था। कुछ दूर चलने पर रूपनारायण बोला—"ससार मे परोपकार बहुत बडी चीज है। क्यो भई महेश ?"

"बेशक ! परोपकाराय नरस्य जीवनम्, परोपकार के लिए ही मनुष्य का जीवन होता है।"

"परोपकार के लिए समय-समय पर लोगो ने बडे-बडे नीच कर्म भी किये हैं।"

"जरूर किये होगे।" श्यामलाल बोला।

"हमारा इरादा इस साल जुआ खेलने का नही था। तय कर लिया था कि बिलकुल नही खेलेगे। लेकिन केवल बगाल फण्ड के कारण हमे

अपना इरादा बदलना पडा। और देख लेना हम शर्तिया जीतेंगे। परोप-कार के लिए हम खेले और हार जाँय—यह नही हो सकता। आखिर जिनके लिए हम खेलेंगे उनका भाग्य भी तो जोर मारेगा।"

"उनका भाग्य तो खत्म हो चुका। उनका भाग्य कुछ होता तो उन पर यह मुसीबत ही क्यो आती।" मुंशी जी बोले।

"यह बात तो नही है मुंशी जी। लोग लाखो रुपये की सहायता दे रहे हैं। अनेक फण्ड खुल गये है। यदि उनका भाग्य नही था तो यह सहायता क्यो मिल रही है?"

"बिल्कुल ठीक कहते हो।" श्यामलाल ने कहा। मुंशी जी मौन रहे। इसी प्रकार का वार्तालाप करते हुए सब लोग ठठेरी बाजार पहुच गये। भीड़ बहुत थी। मुंशी जी बोले—"बड़ी भीड़ है। ऐसे मे क्या खरीद होगी। दूकानदार मनमाने दाम ले लेगा।"

"क्या लेना है?" महेश ने पूछा।

"और सुनो! वहाँ से तो जबरदस्ती साथ ले आये और अब यहाँ पूछते हो क्या लेना है? एक छोटा-सा गिलास ले लेंगे मुनुवाँ के लिए।

"तब फिर काहे को चिन्ता करते हो। आना-दो आना ज्यादा-कम की बात है।"

"सो तो हुई है—बात कही।"

"तो ऐसी वाहियात बात आप कहते ही क्यो है?" इतना सुनते ही मुंशी जी बिगड गये, बोले—"देखो जी, तुम्हारे कहने से हम चले आये-साथ लाकर कहते हो वाहियात बात करते हो। अभी हम लौट जाँय तो क्या हो?"

"ऐसा गजब न कीजिएगा—ये दूकाने आपके भरोसे ही सजाई गई हैं—आप लौट जायँगे तो इन बेचारो का तो दिवाला ही पिट जायगा?"

बड़ी कठिनता से भीड मे घुसकर मुंशी जी ने एक छोटा सा गिलास खरीदा—अन्य साथियो ने भी यथा रुचि कुछ खरीदा।

मु शी जी बोले—"बस ठठेरी बाजार का मेला हो गया—अब घर लौट चलो ।"

लौटते समय रूपनारायण मु शी जी से बोला—"तो मु शी जी इस साल खेलने की बात तय रही ।"

"वाही हो !"

"अरे बगालवालो पर कुछ तो दया करो ।"

"जिताने की जमानत करो तो सोचे ।"

"अच्छा करते है—तुम भी न क्या याद करोगे । बङ्गाल की सहा-यता के लिए हम यह जोखिम भी उठाने को तैयार हैं ।"

महेश बोला—"तो मु शी जी आप भी तैयार हो जाइये । अब क्या डर है ?"

"मु शी जी बोले—"देखो सोचेगे ।"

"सोचना वोचना कुछ नही । अब आप न खेलेगे तो झगड़ा होगा । मै इतनी बड़ी जोखिम उठाने को तैयार हो गया और आप जरा-सी बात नही मानते ।" रूपनारायण ने कुछ बिगड़ कर कहा ।

"अच्छा-अच्छा देखा जायगा ।" यह कहकर मुंशी जी मौन हो गये ।

(३)

अन्त को रूपनारायण तथा उनके साथियो ने मुंशी जी को तैयार कर ही लिया । मु शी जी बोले—"अच्छा एक काम कर सकते है । खेलना तुम, रुपया हमारा रहा । हम खुद न खेलेंगे ।"

"रूपनारायण बोला—"अब यह पख न लगाओ ।"

"बस इतना कर सकते हैं । खेलना हमे आता भी नही—तुम जानते ही हो ।"

"अच्छा खैर यो ही सही ।"

दीपावली के दिन पूजन-भोजन इत्यादि से निवृत्त होकर रूप-नारायण तथा उनके साथी मुंशी जी के यहाँ पहुँचे। मुंशी जी को आवाज दी। मुंशी जी बाहर आये। रूपनारायण बोला—"चलिए ?"

'कहाँ।"

"अब ऐसी बातें करोगे ? सब तय हो चुका है। अब टालमटूल करोगे तो झगडा हो जायगा।"

मुंशी जी मुनुवाँ की माता के पास जाकर बोले—"मुनुवाँ की मा—एक पचीस रुपये तो देना।"

"पचीस रुपये ! अब रात को रुपये क्या होंगे ?"

"ऐसे ही ! काम है !"

"क्या काम है—कुछ बताओगे भी !"

"आज जरा दाँव लगायेंगे।"

"जुआ खेलोगे ! अच्छा ! अभी तक तो जुए के नाम से चिढते रहे—अब आज जुआ खेलोगे ?"

"तुम समझी नही। हम खुद थोडे हो खेलेंगे—खेलवायेंगे।"

"खेलवाओगे ! रुपया तुम खर्च करो और खेले कोई दूसरा ! सठिया गये हो क्या।"

'ओहो ! तुम पूरी बात तो समझी नही और बकना शुरू कर दिया।"

"मैं सब समझती हू। अब तुम्हारे बिगडने के लच्छन लगे हैं।"

"पहले पूरी बात तो सुन लो। वह जो बङ्गाल है न बङ्गाल ! वहाँ आदमी भूखो मर रहे हैं।"

"हाँ वहाँ आदमी भूखो मर रहे है, यहा तुमको जुआ खेलने का शौक चर्राया है।"

"इलम कसम दादा कहा करते थे कि औरत की जात नाकिसउल अक्ल (मन्दबुद्धि) होती है, वह बात आज साबित हो गई। इन्सान

का फर्ज होता है कि पहले पूरी बात सुन ले तब राय कायम करे। तुम पहले से ही फैसला किये बैठी हो। इस फैसले को अदालती जबान मे यकतरफा फैसला कहते है और यकतरफा फैसला हमेशा नाकिस होता है।"

हाँ हम तो बेअकल हुई हैं पर तुम मर्द तो बडे अकलवाले हो। जिस काम को अभी तक बुरा समझते रहे उस काम को अब अच्छा समझने लगे—और ऐसे बुरे समय मे—बलिहारी है इस बुद्धि की।"

मु शी जी दाँत किटकिटाकर बोले—"जी चाहता है अपना सिर पीट लूँ! अरी भलीमानस पहले पूरी बात तो सुन ले। फिर चाहे गालिया दे लेना। बगाल मे आदमी भूखे मर रहे है। सो··।"

"सो तुम यहा जुआ खेलोगे। यह कौन तुक है?"

"ओहो! मुझे बोलने तो दे भगवान! सो उनके लिए सब लोग सहायता कर रहे है—लाखो रुपये—लाखो क्या बल्कि हजारो समझो।'

"लाख ज्यादा होते है या हजार?"

"तुम तो वकीलो की तरह जिरह करती हो। एक बात मुँह से निकल गई। क्योकि तुमने दिमाग खराब कर दिया। हाँ तो—लाखो रुपये से मदद कर रहे है। हमने सोचा कि चलो इस साल उनके नाम पर दाँव लगा दें— जीत गये तो वह रुपया हम भी उनकी मदद के लिए भेज देंगे—नाम हो जायगा।"

"और जो हार गये?"

"हार नही सकते—एक दोस्त ने जमानत कर ली है।"

"यह तो आज नई बात सुनी। जुए मे कोई हारे नही जीत ही जाय—यह पहले तो कभी सुना नही था।"

"पहले तो बहुत-सी बातें नही सुनी थी—आजकल जैसी लड़ाई हो रही है वैसी कभी सुनी थी? ढाई सेर के गेहूँ सुने थे? मै ऐसा बेवकूफ नही हूँ—रात-दिन अदालत का काम करता हूँ—यह जानती

हो ? इसलिए मैने पहले ही जमानत करा ली है। समझी—जमानत ! जमानत से आदमी बँध जाता है।"

"जुए की जमानत तो आज ही सुनी।"

"फिर वही बेवकूफी की बात ! सुनी का लफ्ज मेरे सामने मत कहो। सुनने को तो अभी न जाने क्या-क्या सुनोगी। किसी दिन कचहरी चलकर सुनो—।"

"रहने दो—कुछ तुमने सुन-सुनकर कूडा किया—अब मै रह गई हूँ, सो मुझे बख्शे रहो।"

"अच्छा तो रुपये निकाल दो।"

पत्नी ने मुह फुलाकर रुपये दे दिये।

बाहर आये तो रूपनारायण बोला—"बडी देर लगाई ?"

"अरे भई रुपये भी तो लेने थे ?"

"तो क्या गडे हुए खोदने पडे ?"

"मुंशियाइन से, हाथ-पैर जोडकर, लाये है।" महेश ने कहा।

"चलो—बहुत बको नही।" मुशी जी ने चलते हुए कहा।

(४)

मुंशी जी अपने साथियो सहित एक फड़ पर पहुँचे। रूपनारायण खेलने लगे। दो घन्टे खेलने के बाद रूपनारायण सौ रुपये के लगभग जीते। मुशी जी मन ही मन बडे प्रसन्न हुए कि अच्छी रकम हाथ लगी। सोचने लगे—"पचास रुपये बगाल भेजेगे—पचास रुपये मुनुवाँ की माँ को दे देगे—प्रसन्न हो जायगी।" रूपनारायण से पूछा—"क्या इरादे है ?" और खेला जाय ? इस समय दाँव अच्छा आ रहा है ?"

"तो खेले जाओ ?"

खेल जारी रहा। आध घन्टे पश्चात डेढ सौ हो गये। मुशी जी ने सोचा—अब पचहत्तर भेज देगे। रूपनारायण ने मुशी जी की तरफ देखा। मुंशी जी बोले—"खेले जाओ।"

एक घन्टे पश्चात दो सौ हुए। मुशी जी ने सोचा—"अब पूरे सौ भेज देगे।" रूपनारायण ने पुन मुशी जी की ओर देखा। मुंशी जी बोले—"चलने दो! इस वक्त बगाल वालो की किस्मत लड रही है। हारोगे नही। रूपनारायण ने मुस्कराकर खेल जारी रक्खा। रात के दो बज गये। अब रूपनारायण पूरे तीन सौ जीत गया। मुशी जी ने बगाल फण्ड के लिए पचीस और बढा दिये।

रूपनारायण बोला—"अब बन्द करे।"

मुशी जी पर लोभ देवता सवारी गाँठ चुके थे। अतः वह बोले—"पूरे चार सौ कर लो।"

रूपनारायण ने खेल जारी रक्खा। आध घन्टे मे पचास हार गया। मुंशी जी बोले—"यह पचास लौटाकर बन्द कर देना।"

अब रूपनारायण ने लम्बे दाँव लगाने आरम्भ किये। परिणाम यह हुआ कि जितने जीते थे वे सब निकल गये। मुंशी जी के पचीस भी चले गये। रूपनारायण बोला—"अब और रुपये लाओ तो खेल हो।"

मुशी जी ने मानो रोते हुए कहा—"अब आज रहने दो—रात बहुत हो गई, कल देखा जायगा।"

मुशी जी घर लौटकर आये तो उन्हे दो-तीन दस्त आ गये।

मुंशियाइन ने पूछा—"क्या हार आये?"

"अभी कुछ कहा नही जा सकता, कल पता लगेगा।" मुंशी जी ने भरी हुई आवाज मे कहा।

दूसरे दिन रूपनारायण ने कहा—"आज खेल होगा?"

"पचीस रुपये से खेलना।"

"तो रुपये लाइये!"

"रुपये! मै क्यो लाऊँ! तुम निकालो—तुमने कहा था कि हारोगे तो हमारे रुपये दे दोगे।"

"हाँ यदि आप मेरे कहने से उठ आते। मैने तीन दफा आपसे खेल

बन्द करने को कहा, परन्तु आप यही कहते रहे कि खेलते रहो। ऐसी हालत मे मै हार के लिए जिम्मेदार नही हूँ।"

"क्या ! अब यह बेईमानी करोगे ?"

"चार आदमियो से न्याय करा लीजिए।"

रूपनारायण तथा मु शी जी का झगडा होने लगा। झगडा सुनकर मुहल्ले के कुछ आदमी जमा हो गये। उनके सामने बात पेश हुई तो उन्होने कहा—"रूपनारायण ठीक कहता है। आपको इसके कहने पर खेल बन्द करवा देना चाहिए था। इसने जिताने की जमानत की थी सो जिता तो दिया ही था। जीतने के बाद भी आपने फिर इसे खेलने को कहा—बस वही से जमानत जप्त होनी शुरू हो गई। आप तो अदालती आदमी है। खुद सोच लीजिए।"

सबके कायल करने से मु शी जी को चुप हो जाना पडा। परन्तु बडा अफसोस था। तीन सौ का हिसाब लगाते थे तो कलेजे में हूक उठती। मु शियाइन ने अलग पचास बाते सुनाई—"हो गई जमानत! कहते थे जमानत करा ली है। इतनी बुद्धि भी नही कि जुए की भी कही जमानत होती है।" मु शी जी चुप ! सास भी नही ले सकते थे।

दीपावली बाद रूपनारायण ने कहा—"अब अगले साल खुद खेलियेगा।"

"तुम्हारा सिर! अब जो मुझसे खेलने को कहेगा उस पर फौजदारी चला दू गा। बदमाशो ने चग पर चढ़ाकर मरवा दिया। जो काम कभी न किया था, वह काम करवा दिया और पचीस रुपये की ठोकर दिलवा दी। वही पचीस रुपये घर मे खर्च करते तो शान से त्योहार होता। भगवान तुम्हे समझेगा।" यह कहते-कहते मु शी जी की आँखो मेआँसू आ गये। इधर यार लोगो ने खूब अट्टहास किया। अब आजकल मु शी जी दीपावली के और भी अधिक विरोधी हो गये है।





फैसला



गाँव का पटवारो अपनी चौपाल मे बस्ता खोले बैठा हुआ था, उसके पास दो-तीन ग्रामीण बैठे थे। इसी समय एक वृद्ध लाठी टेकता हुआ आता दिखाई पडा। एक ग्रामीण उसे देख कर बोला नन्दा काका आरहे हैं।

पटवारी ने खतौनी पर से दृष्टि उठा कर देखा। नन्दा को देखकर वह किञ्चित् मुस्कुराया। बगल मे रक्खे हुए बीडी के बण्डल मे से एक बीड़ी निकाल कर सुलगाते हु उसने कहा—"यह नन्दा बडा बना हुआ है। ऐसा चालाक आदमी गॉव मे दूसरा कोई नही है। आने दो, आज देखू गा कितना चालाक है।"

एक ग्रामीण हसता हुआ बोला—"नन्दा काका से मु शी जी भी कच्ची खा गये।"

"कच्ची खा गये ! मुँशी जी कच्ची खाने वाले नही है।" दूसरे ने कहा।

मुंशी जो बोले "हम किसी से कच्ची वच्ची नही खाते। हमे कोई बेचारा क्या कच्ची खिलायगा।"

इसी समय नन्दा आ पहुँचा और बोला—"मुंशी जी सलाम।"
मुंशी जो बीडी का धुआ छोडते हुए बोले—"सलाम, कहो किधर भूल पडे।"

नन्दा बैठते हुए बोला—"अब ऐसी कहोगे, भूल पड़े।"

"झूठ कहते है।"

"मालिक हो, चाहे जो कहो।"

"हमारे पास तो तुम फटकते भी नही।"

"फटके क्या मुंसी जी, अब चला फिरा नही जाता। लडका सब काम संभाले हुए है, हम तो घर मे बैठे रहते हैं। क्यो बबुआ। झूठ तो नही कहता?" अन्तिम वाक्य नन्दा ने वहाँ बैठे हुए एक ग्रामीण की ओर देखकर कहा।

बबुआ उत्साह हीन स्वर से बोला—"हाँ काका ऐसी ही बात है।"

"मुंशी जी समझते हैं कि हमारे पास नही आता—मै जाता ही कहाँ हूँ।"

"अच्छा कहो, इस समय कैसे आये?" पटवारी ने पूछा।

"ऐसे ही आपके दर्शन करने चले आये। बहुत दिनो से भेट-मुलाकात नही हुई थी। हमने कहा आज हो आवें-और कुछ काम भी था-झूठ क्यो बोलें।"

"तो यह कहो काम के ही लिये आये हो, भेट-मुलाकात तो सब बाते हैं।"

"यह बात नही हैं मुंशी जी; काम के लिए तो लडके को भी भेज सकता था। हमने सोचा इसी बहाने मुलाकात भी कर आयेगे।"

"अच्छा कहो, क्या कहते हो?"

"हमने सुना है नया कानून आगया है।"

"हाँ आ गया है ।"

"उसमे क्या क्या है ।"

"है तो बहुत कुछ ! तुम्हे जो जरूरत हो सो कहो ।"

"जो हमारे मतलब की समझो सो बता देओ ।"

"सब कुछ तुम्ही लोगो के मतलब की है, कुछ हमारे की थोडा ही है ।"

"सुनते है, किसान के खेत की मेड पर जो दरख्त होगे वह किसान को मिलेगे। यह ठीक है ।"

"ठीक भी है, नही भी ।"

"यह कैसा ?"

"देखो नन्दा, तुम बडे सयाने हो। सब बातें भेंट मुलाकात मे ही जान लेना चाहते हो, न नजर न नियाज ।"

"नजर-नियाज भी मिलेगी, घबडाते क्यो हो ।"

"तो जब नजर-नियाज मिलेगी तभी बतादेगे ।"

"ऐसा कहोगे ?"

"क्या करे, तुमसे कभी कुछ मिलता है ?"

"अरे सरकार आप हाकिम हैं आप की बदौलत हमारी रोटियाँ चलती हैं आपको हम देने लायक कहाँ हैं ।"

"ये बाते किसी और को पढाओ जाकर, हमसे सीधी तरह बात करो—समझे ? पहले दो रुपये निकाल कर धरो, पीछे कुछ पूछो ।"

अन्य लोगो की ओर देख कर मुंशी जी बोले—"तुम लोग क्यो बैठे हो ? जाओ अपना अपना काम देखो ।"

अन्य सब लोग उठ कर चल दिये ।

नन्दा बोला—"हमारे ऊपर आपकी कुछ नाराजी रहती हैं ।"

"हम नाराज-वाराज किसी से नही रहते। यह सब व्यर्थ को बाते है ।"

नन्दा ने टेंट से निकाल कर दो रुपये मुन्शी जी के सामने रक्खे।

मुंशी जी रुपये उठाते हुए बोले—"हाँ, अब पूछो, क्या पूछते हो।"

"हमारे खेत की मेड़ पर दो पेड़ सीसम के हैं—उन्ही की बाबत् पूछना है।"

"वे अब तुम्हारे हैं, जमीदार का उन पर कुछ अख्तयार नही है।"

"हूं" कहकर नन्दा ने सिर झुका लिया और कुछ सोचने लगा। पटवारी कुछ मुस्करा कर बोला—"काहे, चुप क्यो हो गये? हमे सब हाल मालूम है, अब आनन्द पूर्वक घर पर बैठो, जमीदार कुछ नही कर सकता।"

जो नालिस करे कि हमारा और इनका सौदा साल भर पहले तय हो चुका है तो?"

"उसकी कोई लिखा पढी तो है नही, जबानी बातचीत से क्या हो सकता है।"

"सायत गवाह-साखी गुजारे।"

"सो अब कुछ नही हो सकता।"

नन्दा कुछ देर तक चुप बैठा रहा तत्पश्चात् बोला—"अच्छा तो चलता हू मुंशी जी।"

"अच्छा! सीसम कटवाना तो थोडी लकड़ी हमे भी देना।"

"हाँ! जितनी चाहना ले लेना।"

(२)

नन्दा अहीर, गॉव के अहीरो में सबसे अधिक सम्पन्न था। दो जोड़ी बैल, तीन भैसे, चार पाँच गाय रक्खे हुए था। मुख्य व्यवसाय किसानी था। नन्दा का एक जवान पुत्र था, वयस २४, २५ वर्ष के लगभग थी। खूब हृष्ट पुष्ट और कसरती था। नन्दा घर लौट कर आया तो उसका पुत्र कालिका उसकी प्रतीक्षा ही कर रहा था। कालिका ने पूछा—"मुंशी जी ने क्या बताया?"

"मुशी जी कहते है कि जमीदार का कोई हक नहीं है, जमीदार कुछ नही कर सकता।"

"अब तो विश्वास हुआ ?"

"हाँ—विश्वास क्यो न होगा। पर—।"

"पर क्या ? "कालिका ने भृकुटी चढा कर पूछा।

"हम जमीदार को जवान दे चुके हैं।"

"कौन ! जवान-वबान कुछ नही। दरख्त हमारे वह कुछ नही कर सकते।"

"बेटा ! जरा यह तो सोचो। परसाल वह चाहते तो कटवा लेते। हमारे कहने से ही उन्होने छोड दिये। हमने उनसे यह कहा था कि आप हमे ये दरख्त देओ—हम आपको इनके जो दाम ठीक समझे जायेंगे दे देंगे। हमारे ऐसा कहने से उन्होने दरख्त नही कटाये, छोड़ दिए। तो अब हमे दाम तो देने ही चाहिए।"

"कैसे दाम ? जब चीज हमारी है तो वह दाम लेने वाले कौन होते है।"

"तुम तो खरीद चुके और दाम देने कह चुके।"

"मैने तो नही कहा।"

"तुमने न कहा मैने कहा, बात तो एक ही है।" नन्दा कुछ झुझला कर बोला—"उन्होने हमारी बात पर विश्वास करके दरख्त छोड़ दिए तो अब हमे ऐसी दगाबाजी नही करनी चाहिए।"

"ऐसे धर्मराज न बनो, धर्मराज बनने से काम नही चलेगा। यह है जमीदार, रात दिन किसानो का खून चूसते हैं। इनके साथ धर्मराज बने गुजारा नही होगा।"

"सभी एक से थोडे ही है और फिर चाहे जैसे हो—हमारे तो मालिक हैं, अन्नदाता है।"

"अरे हम उनके खुद मालिक और अन्नदाता है। पैदा तो हमी

करते हैं—और वह बैठे खाते हैं और हमीं पर रुआब झाडते हैं जमीदारो की हस्ती तो मिटा देनी चाहिए। उस दिन का लिकचर सुना था।"

"वही सुन सुन कर तो तुम लोगो के ख्याल बिगड गए—पुरानी परिपाटी छोड दे रहे हो।"

हमे पुरानी परिपाटी नही चाहिए—उसी परिपाटी ने हमारी यह दुर्दशा कर दी।"

नन्दा चुप हो गया। वह इस समय बडी उलझन मे था। उसका अन्तःकरण तो कह रहा था कि जमीदार को वृक्षो का मूल्य मिलना चाहिए। परन्तु लडके के विरोध करने से वह अन्तकरण की आज्ञा मानने में असमर्थ था।

"आज उन्हे जवाब देना है, उनका आदमी बुलाने आता हो होगा।" नन्दा बोला।

"तो जवाब दे देना कि अब दाम कैसे—अब तो वह हमारे हैं।"

"मेरे से तो मरे जी ऐसा नही कहा जायगा।"

"तो तुम न जाना—बैठो यही। हम बात कर आयगे।

"बैठने पावेंगे तब तो—जमीदार तो हमी को बुलावेगा। बात तो हमी से हुई थी, तुमसे तो हुई थी नही।"

"खैर, जब बुलवायेगे तो देखा जायगा—अभी तो हमी जायगे।"

नन्दा चुप हो गया। कुछ क्षरण चुप रह कर बोला—"बुढापे मे मुंह काला कराओगे और क्या।"

कालिका डपट कर बोला—"हमारी चीज और हमी इसके दाम दे। यह अन्धेर! ऊपर से कहते हो काला मुंह कराओगे। ऐसे बहुत धन बढा है तो किसी गरीब को दे देओ, जमीदार को दिए क्या होगा।"

नन्दा अपनी घुटी चाँद पर हाथ फेरता हुआ बोला—"अच्छा भाई, करो जैसा मन मे आवे। अब और क्या कहे तुम मानोगे थोड़े ही।"

जबरदस्ती मान ले'

इसी समय जमीदार का गुड़ैत आ गया और नन्दा से बोला—"ठाकुर बुला रहे हैं।"

नन्दा के बोलने के पूर्व ही कालिका बोल उठा—"चलो, हम चलते हैं।"

"चलो, तुम्ही चलो।" गुड़ैत बोला।

कालिका ने झटपट कुर्ता गले मे डाला और टोपी हाथ मे लिए चौपाल के चबूतरे पर से उतरता हुआ बोला—"चलो।" गुड़ैत कालिका को साथ लेकर चला गया। कालिका के जाने के पश्चात कुछ देर तक नन्दा बैठा सोचता रहा तत्पश्चात अपनी लठिया लेकर यह कहता हुआ उठा— 'यह लड़का उपद्रव मचवायगा।"

(३)

ठाकुर साहब अपने कमरे मे विराजमान थे। उनके पास ही उनका पुत्र बैठा था—वयस २२, २३ के लगभग थी। इन्टरमीजिएट पास करके उसने पढना छोड दिया था, और जमीदारी का काम देखना आरम्भ किया था।

कालिका से ठाकुर साहब बोले "भाई वह शीशम के रुपये अब मिल जाने चाहिएँ। पिछली फसल मे नन्दा ने कहा था कि अगली फसल मे जरूर मिल जायगे।"

कालिका बोला—"वह दरख्त तो हमारे है मालिक!"

"क्या मतलब ? "ठाकुर साहब ने पूछा।

"नया कानून जो बना है उसके हिसाब से दरख्त हमारे हैं।"

"मगर अब तुम्हारे हुए है साल भर पहले जब तुमने लिये थे तब तो तुम्हारे नही थे। हम कटवा रहे थे, तब तुम्हारे बाप ने यह कह कर हम दाम दें देंगे—ले लिये थे। हमने जो यह रियायत की कि दाम नगद नही लिये उसका यह बदला है!"

"बदला बदला कुछ नही है सरकार न्याय की बात है।" कालिका ने कहा।

"न्याय की बात तो यह है कि जब तुम दरख्त खरीद चुके तो तुम्हे दाम देना चाहिए।" जमीदार के पास बैठे हुए गाँव के एक वृद्ध सज्जन ने कहा।"

"यह तो ठीक है दादा। पर बप्पा ने खरीदे थे तो गलती की थी। वह चीज तो जब भी हमारी ही थी, हमारी न होती तो सरकार हमे दिलाती ही काहे को।"

ठाकुर साहब के माथे पर बल पड गये। वह बिगड कर बोले—"हमारे सामने बहुत कानून न छौको। समझे! बड़े बालिस्टर बन के आये। जब खरीदी थी तब चीज हमारी थी। कानून कब बना है। हमारा सौदा कानून बनने के पहले हो चुका था और तुम क्यो आये? तुम्हें हमने नही बुलवाया। हमारी बात नन्दा से हुई थी उसी को जाकर भेजो। रुपये दे तो दे, नही हम दरख्त कटा लेंगे।"

"आप ज़बरदस्त है चाहे जो कुछ करे।" इतना कह कर कालिका उठा और अकडता हुआ चल दिया। डेरे के बाहर आकर कुछ उच्च स्वर से बोला—"जब कटायेंगे तब देखेंगे, लहासें गिर जायगी दिल्लगी नही है।

जमीदार साहब ने कालिका की बात सुनी। पास बैठे हुए वृद्ध सज्जन से वह बोले—"सुना? इन लोगो के दिमाग तो देखो।" वृद्ध सज्जन बोले "बडा बुरा समय आ गया है सरकार कुछ कहते नही बनता। कांग्रेस का बल पाये हुए हैं-इसी से यह दशा है।"

"सो जब खोपडी पर पडेंगे तब काँग्रेस बचाने नही आवेगी। मै और तरह का आदमी हू—कोई करम बाकी न रक्खूगा।" जमीदार साहब का पुत्र बोला—"ले भी जाने दीजिए दो दरखत, कौन बड़ी बात है।"

"कैसे ले जाने दे। पचास रुपये की रकम है।"

"चाहे जितने के हो, अब तो वे उनके हैं।"

"लेकिन उन्होने कानून पास होने के पहले ही खरीद लिये थे—।"

"लेकिन उसकी कोई लिखा-पढी तो है नही !"

"न हो लिखा पढी, जबान भी तो कोई चीज होती है।"

"कानून तो इसमे कुछ कर नही सकता।"

"अरे हम तो कर सकते है। अब ऐसी बात बात मे कानून देखने लगे तो जमीदारी कर चुके।" वृद्ध सज्जन को सम्बोधन करके ठाकुर साहब बोले—"यह दशा है इन पढे लिखो की। यह भला क्या जमीदारी करेगे। इन्हे तो कानून ही खा जायगा।"

इसी समय नन्दा ड़ेरे मे प्रविष्ट हुआ उसके पीछे कालिका भी था। नन्दा को देखते ही ठाकुर साहब बोले–"रुपये लाये नन्दा? आज रुपया दाखिल कर दो, नही कल पेड कट जायेंगे।"

नन्दा बैठते हुए बोला—"रुपया आपका गले बराबर है! आप हमारे मालिक है, अन्नदाता है, आपसे बेईमानी नही करूगा। पर यह लडका सरकार नही मानता है। इसे किसी तरह समझा लेओ।"

"इसे समझाने की हमे क्या गरज पडी है। हमारी तुमसे बात हुई थी।"

"हाँ ठाकुर! मै यह कैसे कह दूं बात नही हुई थी। बात बीसो-बिस्वे हुई थी। झूठ नही बोलूगा भगवान को मुंह दिखाना है। सुना बबुआ रुपये लाकर ठाकुर को दे देओ। जो बात हो गई सो हो गई बचन पूरा करो। रामायण मे कहा है "प्रान जाय पर बचन न जाई।"

कालिका उत्तेजित स्वर मे बोला—"उन पेड़ो से हमे कितना नुकसान पहुंचा है। हमारा १० बिस्वा खेत रद्दी हो गया, पेड़ो की छाया

के मारे उनमे कुछ होता नही है। हम बराबर का लगान देते रहे— जब कि पेड हमारे नही थे, तब हमने इतना नुकसान सहा। इसी मारे न कि मालिको का फायदा होगा। नही, हम उन्हे जमने ही न देते। हमी ने उन्हे पाला-पोसा, जानवरो से बचाये रहे, ठाकुर का कोई आदमी जाता था देखने ? अब सरकार ने हमे दिला दिया तो ठाकुर ही गम खांय। हमने उनके पीछे मेहनत की नुकसान उठाया। ठाकुर को इतनी समाई भी नही है बनते अन्नदाता है।"

"बनते क्या—हुई है अन्नदाता तुम न मानो हमने तो सदा माना है और मानेगे।"

ठाकुर साहब का पुत्र धीमे स्वर मे पिता से बोला—

"ले जाने दीजिये ! उनका हक है।"

"कैसे हक है ! खरीद चुके तब हक काहे का।" ठाकुर ने कहा।

कुछ देर तक मौन छाया रहा। चार व्यक्तियो की विचारधारा चल रही थी। दो युवको की और दो वृद्धो की। वृद्ध (नन्दा) ठाकुर को अपना अन्नदाता समझ रहा था और अपना बचन पूरा करने के लिए तत्पर था। दूसरा वृद्ध (जमीदार) नन्दा को अपनी रियाया समझ कर उससे यह आशा करता था कि वह उनकी आज्ञा चुपचाप मान ले। एक नवजवान (कालिका) जमीदार को अपना शत्रु समझ कर अपने अधिकार के लिये कटने मरने को तैयार था, पिता के बचन का उसके सामने कोई मूल्य ही न था। दूसरा नवजवान (ठाकुर का पुत्र) सोच रहा था कि अब किसानो पर अत्याचार नही होना चाहिए। उनके अधिकार उन्हे मिलने चाहिए। अधिकार के सामने उसकी समझ मे वचन का कोई मूल्य नही था। दोनो वृद्धो की विचार धारा जमीदारो के पक्ष मे थी और दोनो नवयुवको की किसानो के पक्ष मे। लड़के वृद्धो को गलती पर समझ रहे थे और वृद्ध लडको को। एक ओर लड़का बाप की बात नही मान रहा था दूसरी ओर बाप लड़के की

बात नही मान रहा था।

कुछ देर सन्नाटा रहने के पश्चात ठाकुर साहब बोले—"क्यो नन्दा क्या कहते हो तुम्हारे ऊपर ही फैसला है जैसा कहो हमे मन्जूर है।"

कालिका बोल उठा—"मे तो छोटे ठाकुर पर फैसला छोडता हूँ— जैसा वह कह दे, मै मन्जूर कर लू गा।"

नन्दा—"सरकार मै तो जो कह चुका हूँ उससे नही भागूंगा। बबुआ नही देता तो मै देता हूँ।" यह कह कर नन्दा ने टेट से पचास रुपये निकाले और ठाकुर के सामने रख दिये। कालिका की भौहे तन गई।

ठाकुर बोले—"शाबाश नन्दा तुमने अपना बचन पूरा किया।"

छोटे ठाकुर ने पिता से पूछा-"रुपये आपने पा लिये।"

"हाँ पा लिये।"

"अच्छा तो ये रुपये मुझे दे दीजिए।"

"क्या करोगे?" ठाकुर ने पूछा।

"मुझे जरूरत है।"

"ले लो।"

छोटे ठाकुर ने रुपये उठाकर कालिका की ओर बढाते हुए कहा— "लेओ भाई अपने रुपये। फैसला हो गया।" कालिका हाथ जोड कर बोला—"छोटे ठाकुर, आपने इन्साफ किया। बस मै यही चाहता था। रुपये की क्या बात है आपकी बदौलत कमाते खाते और मौज करते हैं। हुक्म हो तो पचास रुपये आप पर से निछावर करदूं।"

बडे ठाकुर बोले—"रुपये लौटाना है तो नन्दा को दे दो। इसने अपने वचन का पालन किया, ईमानदार आदमी है।"

"सरकार मैं तो रुपये नही लू गा।" नन्दा बोला।

"तो तुम्ही ले लो।" छोटे ठाकुर ने कालिका से कहा।

"सरकार मै तो इन्साफ चाहता था सो मिल गया। रुपये जिसके हो

उसे दीजिए।" कालिका बोला।

छोटे ठाकुर बोले—"यह तो बडी मुश्किल है। इन रुपयो का क्या हो।"

ठाकुर साहब के पास बैठे हुए वृद्ध सज्जन बोले—"कोई नही लेता तो किसी धर्म कार्य मे लगा दिए जाय।"

"यह ठीक है। आपने बहुत अच्छी सलाह बताई।" छोटे ठाकुर बोले।

कालिका बोल उठा—"यह बहुत अच्छी बात है।"

छोटे ठाकुर ने रुपये रख लिये। बाद को कालिका की सलाह से वह रुपये छोटे ठाकुर ने कांग्रेस फण्ड मे दे दिये। इस प्रकार यह मामला, जो उपद्रव का रूप धारण करने जा रहा था, नन्दा की नेक-नीयती और छोटे ठाकुर की न्याय-प्रियता के कारण इतने सुन्दर ढग से तय हो गया।



होड़

ग्रामोफोन

एक शब्द बिजली की भाँति घर भर मे फैल गया। एक अष्ट वर्षीय लडका और एक द्वादश वर्षीय कन्या चिल्ला उठे—"बाबू जी बाजा लाये।"

"हल्ला मत मचाओ।" कह कर बाबू जी ने ग्रामोफोन तख्त पर रखवाया। दोनों बालक बालिका उसे घेर कर बैठ गये। बालक ने टर्न-टेबिल पर उँगली रख कर उसे घुमाया बाबू जी चिल्ला उठे—"हैं! यह क्या करता है?" बालक ने चट उँगली उठा ली। वह कुछ देर तक पिता की ओर सशकित नेत्रो से देखकर बोला "इसे छूने से 'क्या होता है?'

पिता के बोलने के पूर्व ही बालिका बोल उट्ठी—"बिगड जाता है, और क्या होता है। यह कह कर बालिका ने गम्भीरता पूर्ण उत्सुकता से बाबू जी के मुँह की ओर देखा मानो वह बाबू जी के मुख से अपनी बात का समर्थन सुनना चाहती है।

बालक बोला—"वाह ! बिगड़गा कैसे ? घूमता तो वह हई है।"

बाबू जी बोल उठे—',ऐसे घुमाने से बिगड़ जायगा।"

"लेओ मैने तो पहिले ही कह दिया था।" बालिका ने कुछ गर्व तथा बड़प्पन के साथ कहा।

इसी समय बाबू जी ने चारो ओर दृष्टि दौडाई और पत्नी को वहाँ उपस्थित न पाकर कुछ खिन्न मुख से पूछा—"तुम्हारी अम्मा कहाँ है ?" "बुला लाऊँ ?" कहकर बालक "अम्मा जी !" "अम्मा जी !" पुकारता हुआ एक कमरे के भीतर घुस गया। इधर बाबू जी ने चाबो भर कर सुई लगाई और एक रिकार्ड चढा दिया। रिकार्ड के शब्द घर भर मे गूँजने लगे। इसी समय बालक अम्माँ जी का हाथ पकडे कमरे से निकला। बाबू जी ने मुँह बना कर पूछा—"कहाँ थी ? घण्टा भर हो गया आये, तुम्हारा पता नही।"

बच्चो की माता ग्रामोफोन का स्वागत करने के लिये द्वार पर नही मिली—यह बात बाबू जी को अच्छी नही लगी। पत्नी ने उत्तर दिया-"जरा कपडे—वपड़े धर उठा रही थी। बाजा ले ही आये ?"

"तोबा ! बाजे का स्वागत क्या इन्ही शब्दो मे किया जाता है ? जिस वस्तु के लिये साल भर से लालसा लगी हो उसकी प्राप्ति पर केवल इतना कहना कि ले ही आये।" बाबूजी के उत्साह और उमग पर तुषारपात हो गया। वह बाजे के पास से हट आये और कपडे उतारने लगे। दोनो बच्चे बाजे के अत्यन्त निकट बैठकर उसे कौतुहल पूर्ण दृष्टि से देखने लगे।

"कितने का मिला ?" पत्नी ने प्रश्न किया।

"जितने का मिला ले आया।" पति ने अन्यमनस्कता पूर्वक उत्तर दिया।

"देखो बाबू जी रज्जू बाजा छूता है।" बालिका ने कहा।

"कहाँ छूते है—झूट मूट नाम   है।"

'अच्छा, अभी नही छुआ था ?"

यद्यपि पत्नी की उदासीनता ने बाजे के प्रति बाबूजी की दिलचस्पी कुछ कम हो गई थी परन्तु फिर भी बाबू जी बोल उठे—"रज्जू ! छुओ मैत बिगड जायगा ।" इसी समय रिकार्ड समाप्त हुआ। बाबू जी ने लपक कर बाजे को बन्द किया ।

पत्नी बोल उठी—"आवाज तो अच्छी है ।"

पत्नी के इन शब्दो से बाबू जी की मृत प्राय दिलचस्पी को चन्द्रोदय सा मिला । वह झट बोल उठे—"सवा सौ रुपये लगे भी तो हैं ।'

"रिकार्ड कितने हैं ?

' अभी तो एक दर्जन लाया हूँ । रिकार्डों का क्या धीरे धीरे काफी हो जायगे ।"

रज्जू बोला—"बाबू जी बजाओ । '

"बस अब इस समय नही रात को बजायेंगे । रात मे अच्छा लगता है ।" बच्चो की माता बोली ।

"हाँ हाँ रात मे बजायेंगे । अभी रहने दो ।" बाबू जी ने कहा ।

"अम्माँ जी ! मैं ने देख लिया है अब मैं बजा लूँगी ।"

"मै भी बजा लूँगा ।" रज्जू बोल उठा ।

"हाँ तुम बजा लोगे, तोड ताड के रख दोगे ।" बालिका ने मुँह बना कर कहा ।

बाबू जी ने बाजा समेट कर एक किनारे रख दिया ।

उपर्युक्त बाबू मुकुट बिहारीलाल के पडोस में रामचरण दास नामक एक सज्जन रहते थे । यह महाशय मुकुट बिहारी लाल की अपेक्षा कुछ अल्प बयस्क थे । ऊपर से तो इन दोनो पड़ोसियो मे सद्भाव था, परन्तु रामचरण दास के हृदय मे मुकुट बिहारीलाल के प्रति कुछ ईर्षा भाव था । रात के नौ बजे थे । रामचरण दास अपनी पत्नी सहित छत पर लेटे थे । इसी समय मुकुट बिहारीलाल के घर मे ग्रामो-

फोन बजना प्रारम्भ हुआ। रामचरणदास की पत्नी बोल उठी—"लख पड़ता है मुकुट बिहारी बाजा लाये हैं।"

रामचरणदास बोले—"लाये होगे, क्या पता।"

दोनो चुपचाप होकर रिकार्ड सुनने लगे। रिकार्ड समाप्त होने पर रामचरणदास की पत्नी बोली—"कैसा है ?"

—"मामूली मालूम होता है आवाज बहुत साफ नही है।"

—"आवाज तो साफ है।" पत्नी ने कहा।

—"क्या साफ है ? आजकल ऐसे ऐसे बाजे बने हैं कि यह मालूम ही नही होता कि बाजा बज रहा है। यही मालूम होता है कि गाना बजाना हो रहा है।"

—"हाँ यह बात तो मालूम होती है।"

—"तब इसी से तो कहता हूँ मामूली है।"

—"तुम तो बाजा लाते ही रह गये।"

—"मैं जब लाऊँगा तब बढिया लाऊँगा। मामूली बाजा कहो कल ले लाऊँ परन्तु मैं लाना नही चाहता। चीज लावे तब बढिया लावे घटिया लाने से तो कोई लाभ नही।"

—"सुनो, सुनो यह रिकार्ड अच्छा है।"

"क्या अच्छा है ? रिकार्ड ऐसे बढिया बने हैं कि सुनो तो कहो। कि ये सब सस्ते रिकार्ड हैं बीस बीस आने वाले। बढिया रिकार्ड चार चार साढ़े चार चार रुपये के आते हैं।"

—"नीलाम से लाये होगे।"

—"नीलाम मे भला कही चीज लाभ से मिलती है। मैं लाऊँगा तो चीज नयी लाऊँगा।"

—"हाँ और क्या, चीज लावे तो नयी लावे, पुरानी चीज किस काम की। इसी प्रकार जब तब दोनो जागते रहे टीका टिप्पणी करते रहे। यद्यपि दोनो को बाजा अच्छा मालूम हो रहा था परन्तु दोनो अपने २

मनोगत भावो को दवा कर लापरवाही दिखा रहे थे। अन्त मे बाजा सुनते २ दोनो सो गये। सबेरे चार बजे शहनाई की आवाज सुन कर पहले पत्नी की आँख खुली। उसने जो गौर किया तो मालूम हुआ पडोस मे वही रात वाला ग्रामोफोन शहनाई अलाप रहा है। इस समय रात के सन्नाटे मे शहनाई की आवाज बड़ी भली मालूम हो रही थी। वह ध्यान पूर्वक सुन कर उसका आनन्द लेने लगी।

थोडी देर में रामचरणदास की भी आँख खुल गई। उन्होने पत्नी को जागते देख पूछा—"क्यो जाग रही हो?"

—"क्या कहूँ बाजे ने जगा दिया। इन्होने मुँह अँधेरे से ही फिर टेटे लगाई। उधर रात के बारह बजे तक सोने न दिया, अब फिर चार बजे से लग्गा लगा दिया।" पत्नी ने मुँह बना कर कहा।

बाबू रामचरणदास हँस कर बोले—"नया शौक है—पहले कभी बाजा काहे को नसीब हुआ था।"

—"तो ऐसा भी शौक किस काम का कि दिन देखे न रात।" उनसे पत्नी ने कहा और मन ही मन—शहनाई का रिकार्ड एक बार लगावें तो अच्छा।

"ऐसे बाजे से तो वे बाजे भले। सबेरे सबेरे नीद हराम की।" पत्नी से रामचरणदास बोले और मन मे सोचा—चाहे जो हो बाजा अवश्य खरीदना चाहिये।

(३)

—"राम! राम! इस बाजे ने तो नाक मे दम कर दिया।" कहती रामचरण दास की पत्नी छत पर चढ गई। शाम का समय था। ठडी हवा चल रही थी। रामचरणदास की पत्नी ने अपनी छत पर से मुकुट-बिहारी की छत की ओर झाँका। मुकुट बिहारी की पत्नी चारपाई पर लेटी हुई थी। उनकी कन्या बाजा बजा रही थी। पास मे उनका पुत्र बैठा हुआ था। पडोसिन को झाँकते देख कर मुकुट बिहारी की पत्नी

बोली—"आओ बहन बाजा सुन लो।"

रामचरण की पत्नी बोली-"इसका क्या सुनना-गली गली बजा करते है, सुनते सुनते कान पक गये।"

मुकुट बिहारी की पत्नी को यह बात बुरी मालूम हुई। उसने व्यग्यपूर्वक कहा-"जिनके पास है उन्हे सुनना ही पडता है।"

—"इसी मारे तो हमने अभी तक म गाया नही। उन्होने कई बेर इच्छा की कि ले आवें, पर मैने मना कर दिया। दो चार दिन तो अच्छा मालूम होता है-फिर अच्छा नही लगता।"

—"रिकार्ड नये आते रहे तो सदा अच्छा लगता रहता है। पुराने रिकार्ड तो बुरे लगेगे। यह पैसे का खेल है बहन। इसमे दस बीस रुपये हर महीने खरचता रहे तो अच्छा लगता है।"

पैसे की बात तो हुई है पर सारी बात यह है कि मुझे तो अच्छा ही नही लगता।"

—"पैसे का खेल है न।"

—"कितने का लिया?" रामचरणदास की पत्नी ने पूछा।

—"सवा सौ का बाजा है रिकार्ड अलग से है।"

—"घटिया है। अच्छा बाजा डेढ दो सौ से तो कम नही मिलता नीलाम से लिया होगा?"

—लिल्लाम से नही लिया, बिल्कुल नया है। हमारे यहां लिल्लाम की चीज नही आती। तुम लिल्लाम से मँगा लेना-सस्ता मिल जायगा।"

—"हमे तो शौक ही नही है।"

—"हाँ पैसे का खर्च है।"

—"शौक हो तो पैसा भी हो जाता है। जब शौक ही नही है तो चाहे मुफ्त मिले तब भी भारू है।"

इतना कहकर रामचरणदास की पत्नी वहाँ से हट आई परन्तु

उसके हृदय मे पडोसिन की बातों से बड़ा शोक हुआ। पति के आने पर उसने उनसे कहा "आज मुकुटबिहारी की घर वालो ने ऐसी कही कि क्या कहूँ। बात बात मे यही ताना देती थी कि पैसे का खेल है, पैसे का खर्च है। ऐसी बडी पैसे वाली है। उन्ही के पास तो पैसा है और किसी के पास तो थोडा ही है। चाहे जो हो अब एक बाजा तो लेना ही पडेगा। जब तक बाजा नही आजायगा मेरे जी को कल न पडेगी।"

रामचरणदास बोले—"अच्छी बात है, देखो कुछ न कुछ प्रबन्ध करूंगा।" अन्त मे रामचरणदास ने दो सौ रुपये कर्ज लेकर एक बाजा खरीद ही लिया। अब दोनो ओर से जवाबी लड़ने लगी। दिनभर कोई न कोई बाजा बजा ही करता था। जब मुकुट बिहारी के यहा बन्द होता तो रामचरणदास के यहाँ बजने लगता और जब रामचरण के यहाँ बन्द होता तो मुकुटबिहारीलाल के यहाँ बजने लगता। मुहल्लेवालो की नाक मे दम हो गया। परन्तु करते क्या, मजबूर थे। ग्रामोफोन बजाना कोई कानूनी जुर्म नही था। परन्तु अब लोगो को यह आश्चर्य होने लगा कि समय असमय ग्रामोफोन बजाना जुर्म क्यो नही समझा जाता। रिकार्डों मे भी होड चलने लगी। मुकुट बिहारीलाल आज जो रिकार्ड लाये दो तीन दिन वाद रामचरणदास भी वही रिकार्ड लाये। अथवा रामचरणदास को कोई नया रिकार्ड लाना ही पडा। और लुफ्त यह कि दोनो को एक दूसरे से शिकायत। जब मुकुटबिहारी के यहाँ बजता तो रामचरणदास नाक—भौं सिकोड कर कहते कि—"जब देखो तब टे टे लगाये रहते है—न दिन देखें न रात।" इसी प्रकार मुकुटबिहारी के घर मे भी रामचरणदास के यहाँ समय—कुसमय बाजा बजाने का चर्चा होता रहता। मुहल्ले वालो को तो दोनो से शिकायत थी। अन्त में जब मुहल्ले वाले तग आ गये तो यह सोचा गया कि इस युद्ध को समाप्त करना चाहिए। मुहल्ले के कुछ बडे बूढ़े इस बात के लिए उद्यत हुए।

एक के घर पर समय नियत करके दोनों बुलाये गये और उनके सामने परिस्थिति रक्खी गई। मुकुटबिहारी सब सुन चुकने पर बोले—"ग्रामोफोन बजाना कोई जुर्म तो है नही।"

"जुर्म होता तो हम लोग आप से न कहते तब सीधे पुलिस मे कहते।" एक महोदय बोले।

—"भला बताइये तो यह भी कोई बात है कि रात के बारह एक-एक बजे तक चिल्ल-पो मची रहती है। और एक दिन हो दो दिन हो, चार दिन हो, तब तो खैर है, रोजाना का यही किस्सा है। नीद हराम हो गई जहाँ जरा नीद आने लगी वही "सँवरिया ने मारा नजर भरके।" सवरिया साले की नजर पडी नही कि नीद देवी रस्सियाँ तुडा कर भागी। वैसे तो चाहे सवरिया की नजर न मारती, मगर जनाब, इस तरह तो सचमुच मार डालेगी।' एक दूसरे महाशय ने उत्तेजित होकर कहा।

—"हम तो बाजा अवश्य बजायेगे।" रामचरणदास ने कहा।

—"बजाइये! कोई मना नही करता परन्तु समय कुसमय देखकर बजाइये यह नही कि रात के दो बजे आँख खुल गई तो उसी समय रेतने लगे। वाह! यह भी कोई शराफत है?"

—"यह बीज मुकुटबिहारी का बोया हुआ है, न यह बाजा लाते, न मुझे लाना पडता।"

—"यह कैसे?" एक ने प्रश्न किया।

—"यह बाजा लाये। इनकी पत्नी और मेरी पत्नी मे कुछ वार्त्तालाप हुआ। कुछ ताना दिया होगा, बस मेरी पत्नी मेरे पीछे पड़ गई। मजबूर होकर मुझे भी लाना पडा। इस बाजे के पीछे मुझ पर तीन चार सौ का कर्ज भी हो गया। आपके यहाँ जब कोई नया रिकार्ड आया तब मुझे भी लाना पडा।"

यह सुनकर उपस्थित लोग बहुत हँसे। अन्त मे दोनो को समझा

बुझा कर उनमे सन्धि कराई गई और आपस की यह होड बन्द करने के लिये उनसे प्रार्थना की गई।

अब आजकल मुहल्ले मे शान्ति है। कभी-कभी मुकुट बिहारी के यहाँ और रामचरणदास के यहाँ घण्टे आध घण्टे के लिये बाजा सुनाई पडता है। सचै बात तो यह है कि वे दोनो स्वय बाजे से ऊब चुके थे परन्तु केवल होड के कारण बजाया करते थे। जब होड समाप्त होगई तो उनका शौक भी समाप्त होगया।



ताश का खेल



सबेरे आठ बजे देहली एक्सप्रेस स्टेशन पर आकर रुका। यात्री उतरने चढने लगे। इसी समय हाथ मे एक एटेची लिये हुए एक अर्द्ध-वयस्क पुरुष जो आँखो पर नीला चश्मा चढाये था—घनी दाढी मूछें कोट-नेकटाई तथा पेन्ट से सुसज्जित एक सेकेण्ड क्लास कम्पार्टमेट मे चढ गया। इस कम्पार्टमेट मे एक क्लीनशेव्ड गोरे चिट्टे सज्जन जिनकी वयस ३०, ३५ के लगभग होगी पहले से ही उपस्थित थे। यह सज्जन गठीले बदन के बलवान आदमी प्रतीत होते थे। सिर के बाल काफी चिकने तथा चमकदार कमीज भी बढिया कपडे तथा डिजायन की थी।

अर्द्धवस्यक व्यक्ति ने अपने एटेची से एक अग्रेजी का पत्र निकाला और पढना आरम्भ किया। दूसरे व्यक्ति ने भी एक हाकर से अखबार खरीदा। इसी प्रकार दोनो अखबार पढने लगे। गाडी चल दी।

सबसे पहले अर्द्धवयस्क सज्जन ने अखबार समाप्त किया और उसे एटेची मे रखकर एक अग्रेजी का मासिक पत्र निकाला। कुछ क्षण पश्चात क्लीन शेव्ड महाशय ने भी अखबार समाप्त करके अपने

सामने रख लिया और जोर की अगड़ाई ली। तदुपरान्त अर्द्ध वयस्क की ओर देखकर बोला—"आप कहाँ तशरीफ ले जायगे ?"

"मै देहली जा रहा हूँ और आप ?"

'मै भी देहली जा रहा हूँ। हमारा आपका साथ आखिर तक रहेगा।" क्लीन शेव्ड महाशय ने हँसकर कहा।

"जी हाँ शाम को ६ बजे देहली पहुँचेगा।"

"हाँ कुछ पहले पहुँच जायगा—पाँच बजे के करीब।"

इसके पश्चात अखबारी समाचारो पर वार्तालाप होने लगा। कुछ देर तक यह वार्तालाप चला। इसके पश्चात् दोनो मौन होकर खिड़की के बाहर का दृश्य देखने लगे। सहसा क्लीनशेव्ड महाशय बोले—"सफर मे वक्त काटना बहुत मुश्किल हो जाता है।"

"जी हाँ खास कर दिन का सफर तो बड़ी मुश्किल से कटता है।"

"जी हाँ। रात मे तो सोते चले गये समय मालूम ही नही होता।"

"मुझे तो दिन मे भी नीद आने लगती है।"

"इसकी वजह है। रेल के हिलने से बदन भी हिलता रहता है और बदन हिलने से नीद आने लगती है। आपने देखा होगा कि बच्चो को सुलाने के लिए गोद मे लेकर या पालने मे झुलाया जाता है। ऐसा करने से बच्चा सो जाता है। बच्चे के सो जाने की वजह बदन का हिलना ही होता है।"

"बिल्कुल ठीक ! आपने साईटिफिक बात कही।"

"मैंने साइन्स की भी 'स्टडी' की है।"

"खूब ! बड़ा इन्टरेस्टिग सबजेंक्ट है।"

"जी हाँ ! साइन्स से सब बात की असलियत मालूम हो जाती है।"

"मेरा भी इरादा साइन्स लेने का था, मगर मै मैथेमेटिक्स मे कमजोर था इसलिए साइन्स न ले सका। साइन्स मे मैथेमेटिक्स बहुत है।"

"जी हाँ ! मैथेमेटिक्स खुद ही साइन्स है ।"

"इसमे क्या शक है ।"

दोनो पुनः मौन होकर बाहर की ओर देखने लगे ।

थोडी देर पश्चात गाड़ी एक स्टेशन पर रुकी ।

गाड़ी के रुकते ही दो अन्य महाशय कम्पार्टमेन्ट मे आगये । इन दोनो ने बीच वाले बर्थ पर आसन जमाया । इनके पास भी अधिक सामान न था—केवल एक एक एटेचीकेस था । कुछ देर ये दोनो परस्पर इधर-उधर की बातें करते रहे । इसके पश्चात् एक बोला—"ताश निकालो, किसी तरह समय तो कटे ।"

दूसरे ने एटेची खोल कर एक पैकेट ताश निकाला और उसे फेंटते हुए दूसरे से पूछा "क्या खेलोगे—चानस ?"

"हाँ दो आदमियो मे और क्या हो सकता है ।"

"अच्छी बात है ।"

यह कह कर उसने पत्ते बाँटे और खेल आरम्भ हुआ । क्लीन शेव्ड महाशय खेल मे दिलचस्पी लेने लगे । अर्द्ध वयस्क सज्जन अर्द्ध शयनावस्था मे आखे बन्द किये लेटे थे ।

खेल होता रहा । इतने मे इटावा स्टेशन आ गया । ताश अलग रखकर एक बोला—"यहां पूरियाँ लेना चाहिए-अच्छी होती है ।"

"हाँ ! इटावा की पूरियाँ मशहूर हैं ।"

उन दोनो ने, पूरियाँ खरीदी । क्लीन शेव्ड महाशय ने कुछ फल लिये । अर्द्धवयस्क व्यक्ति ने भी फल खरीदे । नवागन्तुक व्यक्तियो मे से एक बोला—"पूरियाँ लीजिए, बढिया हैं ।"

"सफर मे मैं अन्न कम खाता हूँ । फल ही खालेता हूँ ।" क्लीन शेव्ड महाशय बोले ।

अर्द्धवयस्क व्यक्ति बोल उठा—

"जी हाँ ! मैं भी सफर मे फल का ही इस्तेमाल रखता हूँ ।"

"साहब, हमारा तो पेट बिना अन्न के नही भरता। न जाने लोग कैसे फल से पेट भर लेते हैं।"

"पेट तो भर जाता है। यह कहिये नियत नही भरती।"

"जी हाँ! भोजन के बाद जो एक पेट भरने तथा तृप्त होने का अनुभव होता है, वह फल खाने से नही होता। यह अन्तर है। वैसे पेट तो फलो से भी भर ही जाता है।" इसके बाद दोनो पूरियाँ खाने मे जुट गये। शेष दोनो फल खाने लगे। खा पी चुकने के बाद नवागन्तुक ने अपनी जेब से पानो का डिब्बा निकाला। उसमे से दो पान उन्होने पहले क्लीन शेव्ड महाशय को दिये। तदुपरान्त अर्द्धवयस्क सज्जन की ओर दो पान बढ़ाये।

अर्द्धवयस्क सज्जन ने क्षमा माँगते हुए कहा—"मैं पान नही खाता।"

"बिल्कुल!"

"जी! पान खाने से मुँह मे छाले पड जाते हैं।

यह कह कर उसने अपना सिगरेट केस निकाला और उसमें से एक सिगरेट सुलगा कर केस जेब मे रख लिया।

उन तीनो व्यक्तियो ने भी अपने अपने केस निकाल कर सिगरेट सुलगाई। उन दोनो मे से एक बोला "ताश बाँटूं?"

"दो आदमियो में लुफ्त नही आता। चार आदमी हो तो ब्रिज खेला जाय।"

क्लीन शेव्ड सज्जन बोल उठे—"ब्रिज तो मैं भी खेल सकता हूँ।"

"वाह वा! तब तो बड़ी सुन्दर बात है। आप ब्रिज खेलेगे?" अर्द्धवयस्क सज्जन से प्रश्न किया गया।

"जी हाँ खेल लूंगा।"

"फिर क्या है—"पार्टी बन गई।"

"मगर ब्रिज मे बिना स्टेक (दाँव) के लुफ्त न आयगा।"

"हाँ यह बात तो है। आपको स्टेक से खेलने मे कोई आबजेक्शन (आपत्ति) तो नही है?"

"जी नही! ब्रिज तो स्टेक का खेल ही है।"

"वाह वा!, तब तो काम बन गया। आइये इधर आजाइये।"

अर्द्ध वयस्क सज्जन क्लीन शेव्ड महाशय के पास आ बैठे। एक नवागन्तुक क्लीन शेव्ड महाशय का पार्टनर बन गया, दूसरा अर्द्ध वयस्क सज्जन का। खेल आरम्भ हुआ।

(३)

पत्ते बाँटते हुए सहसा क्लीन शेव्ड महाशय बोल उठे—"स्टेक तो रख लीजिए।"

"चार आना प्वाइन्ट? क्यो साहब?"

अन्तिम वाक्य अर्द्ध वयस्क सज्जन से कहा गया।

"जैसा आप लोग ठीक समझे मुझे कोई आपत्ति नही।"

"क्लीन शेव्ड महाशय बोले—"आठ आना रक्खो।"

"आठ आना सही क्यो साहब?"

"जैसा आप लोग ठीक समझें।" अर्द्धवयस्क महोदय ने कहा।

"तो बस आठ आना प्वाइन्ट ही रहा।" इसके पश्चात खेल आरम्भ हुआ।

पहला "रबर" समाप्त हुआ। यद्यपि 'रबर' अर्द्धवयस्क सज्जन तथा उनके पार्टनर का हुआ परन्तु फिर भी ये दोनों बीस प्वाइन्ट से हारें, क्योकि ये दोनो पहले बहुत 'डाउन' दे चुके थे।

दूसरा रबर क्लीन शेव्ड महाशय जीते। इस रबर मे भी पन्द्रह प्वाइन्ट से क्लीन शेव्ड तथा उनके पार्टनर महाशय जीते। तीसरा रबर अर्द्धवयस्क महाशय जीते। इसमें इनकी तीन प्वाइन्ट की जीत रही। इसी प्रकार तीन घन्टे तक खेल चलता रहा। तीन घन्टे पश्चात अर्द्ध वयस्क महाशय तथा उनका पार्टनर १०० प्वाइन्ट की हार मे होगये।

अर्द्धवयस्क सज्जन बोले—"अब रबर और खेल लीजिये। शायद कुछ तकदीर लड़ जाय और हार मे कुछ कमी हो जाय।"

क्लीन शेव्ड महाशय हसकर बोले—"जरूर, सँभल कर खेलिये। आप डाउन बहुत देते हैं।

"हमारे पार्टनर साहब 'ओवरविड' कर जाते है। इस बार जरा समझ-बूझ कर 'काल दीजिएगा।"

अर्द्धवयस्क का पार्टनर बोला—"इस बार मैं काल दूंगा ही नही—आपको सपोर्ट करूंगा बस।"

"नही। जब पत्ते अच्छे हो तो काल दीजिए—कमजोर पत्तो पर मत दीजिए।"

खेल आरम्भ हुआ। एक घन्टे मे यह रबर भी समाप्त होगया। इस रबर मे भी अर्द्धवयस्क सज्जन बारह प्वाइन्ट से हारे। इसी समय गाजियाबाद स्टेशन आ गया। अर्द्धवयस्क सज्जन बोले—"अब रखिये! देहली आ रहा है। आज कल (भाग्य) खराब है। जीत नही सकते। "कुल कितने प्वाइन्ट से हारे।"

"एक सौ बारह प्वाइन्ट से!"

"यानी छप्पन रुपये।"

"जी हां।"

"तो आधे आप दे आधे मैं।"

अर्द्धवयस्क ने अपने साझी से कहा।

"जी हां!" यह कह कर उसने अपना 'पर्स' (बटुवा) निकाला और अट्ठाइस रुपये निकाल कर दे दिये। अर्द्धवयस्क सज्जन अपनी बर्थ पर आगये और उन्होने अपना एटेची केस खोला। सहसा इन तीनो के कान मे आवाज आई—"हैन्ड्स अप।"

तीनो ने अर्द्धवयस्क की ओर देखा। उसके हाथ मे एक पिस्तौल था जिसकी नली इन तीनों की ओर थी। तीनो ने घबराकर

अपने अपने हाथ उठा लिये ।

ट्रेन शाहदरा स्टेशन पर पहुँच रही थी। अर्द्धवयस्क सज्जन बोले—"मै आप लोगो की तलाश मे बहुत दिन से था। भोले भाले और ब्रिज के शौकीन खिलाडियो को आप तीनो मिलकर खूब लूटते हैं। मेरे पार्टनर साहब जान बूझ कर 'ओवर बिड' करते थे और खेलते भी खराब थे। क्यो साहब थ्री नोट्रम्प्स पर फोर स्पेड का काल, वह भी सिर्फ चार पत्तो पर जिसका इक्का भी आपके पास नही।"

इसी समय शाहदरा स्टेशन पर गाडी रुकी। अर्द्धवयस्क ने दाढी मूंछ उतार डाली। अब वह भी क्लीन शेव्ड व्यक्ति होगया। उसने खिडकी से झाक कर प्लेटफार्म पर खडे हुए कान्स्टेबिल को पुकारा। उसके आने पर उसने कहा—"तीन आदमियो को गिरफ्तार करना है। जल्दी करो। हाँ आप लोग उतरिये। तीनो चुपचाप गाड़ी के बाहर आगये। उनके प्लेटफार्म पर उतरते ही पुलिस ने उन्हे हिरासत में ले लिया।

सब इन्सपेक्टर बोला—"खूब पकडा इन्सपेक्टर साहब!"

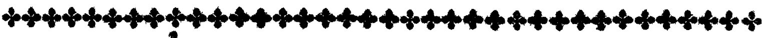
"बहुत दिनो मे फँसे हैं।"

दूसरे दिन अखबारो मे समाचार छपा—"सी० आई० डी० इन्सपेक्टर ने ठगों के एक दल को गिरफ्तार किया है। कहा जाता है कि यह दल ताश के खेल मे मुसाफिरो को ठगने का व्यवसाय किया करता था।





लगान



(१)

"मैं भी कुम्भ-स्नान करने जाउंगी"

चारपाई पर लेटी हुई सोहनलाल की वृद्धा माता ने कहा। वृद्धा की वयस ५५ वर्ष के लगभग थी। इधर एक सप्ताह से बुढिया को ज्वर आ रहा था। चारपाई के पास बैठी हुई स्त्रिया हँसने लगी। एक बोली-'माजी ! तुम से उठा तो जाता नही स्नान करने कैसे जाओगी ?"

"जाउंगी !" बुढिया ने दृढता पूर्वक कहा।

सोहनलाल की पत्नी धीमे-स्वर मे बोली—"कभी कभी इस तरह बकने लगती हैं।"

"बुखार मे बकने लगते हैं। इस समय बुखार अधिक हो गया होगा।"

स्त्री ने बुढिया के माथे पर हाथ रख कर कहा—ऐसा कुछ बुखार भी नही है।"

सोहनलाल की पत्नी ने भी हाथ धर कर देखा। देखकर वह भी बोलो—"हाँ ! कुछ अधिक तो नही है खाली हरारत है।"

बुढिया पुन. बोली—"सोहन कहाँ है ?"

सोहन की पत्नी बोली "दवा लेने गये हैं ?"

बुढिया बोली "दवा-अबा नही खाउ ंगी, कुम्भ जाउ गी। वहाँ अच्छी हो जाउ गी।"

वह स्त्री बोली—"मांजी ! भला तुम से जाया जायगा। वहाँ इतना भीड़ भड़क्का होगा कि आदमी का खड़ा होना कठिन होगा तुम तो अभी अपने पैरो चल भी नही सकती।"

'जाउ ंगी !" बुढिया ने मानो पूर्ण निश्चय के साथ कहा।

दोनो स्त्रियाँ पुनः हँसी। वह स्त्री बोली—"कोई बुखार ऐसा होता है कि थोड़ी हराहत मे भी आदमी बकने लगता है।

इसी समय सोहनलाल दवा लेकर आगया।

सोहनलाल बोला "तुम तो अम्माँ पागलो की सी बाते करती हो। भला तुम कुम्भ मे जाने लायक हो ! उठकर बैठना पड़ेगा—फिर रेल का सफ़र--यह सब तुम्हारे बूते का होगा !"

"वहाँ तक पहुंच जाऊ ं। फिर चाहे मर जाऊ ं।"

"वहाँ तक पहुँचना ही कठिन है। तुम तो रास्ते मे ही रह जाओगी। तुम नही जा सकती। उसका ध्यान छोड़ो !"।

"जाउ गी तो जरूर !"

"अच्छा जाना पहले जाने लायक हो जाओ। अभी कुम्भ के चार पाँच दिन बाकी हैं। तब तक जाने लायक हो जाओ तो चली जाना।"

"बुढिया फिर उसी प्रकार बोली "हाँ जाऊ ंगी !"

सोहनलाल ने दवा पिलाई। थोड़ी देर पश्चात बुढ़िया को निद्रा आगई।

(२)

शाम को सोहनलाल के परम मित्र ब्रह्मानन्द आये। उन्होने पूछा "माँ का क्या हाल है ?"

"हाल वैसा ही है। बुखार तो अभी उतरा नही। कुम्भ की रट लगाये हैं।"

"क्या बतावें। बेचारी ऐसे बुरे मौके पर बिमार हुई। नही मैं उन्हे अवश्य ले जाता।"

"तुम कब जा रहे हो ?" सोहन ने पूछा।

"मैं कल जाऊंगा।"

"साथ मे कौन कौन जारहा है।"

"माँ, बुधा, छोटा भाई और पत्नी।"

"बड़ा बखेड़ा लिये जारहे हो।"

"क्या कहूँ ! प्राण बचते हैं ! मुझे तो भई इन बातो मे विश्वास नही कि कुम्भ नहाने से मोक्ष मिलती है। मेरा तो यह ख्याल है कि यह पुराने जमाने का सम्मेलन है। पहले रेल वेल तो थी नही जो लोग हर साल सम्मेलन कर लिया करते। इसलिये छः वर्ष और बारह वर्ष बाद वह सम्मेलन होते थे। इस प्रकार देश भर के आदमी परस्पर मिल लेते थे।"

"तुम्हारा ख्याल ठीक है।"

"चलो जरा माता जी को देख ले।"

"चलो, परन्तु उनसे न कहना कि कुम्भ जा रहे हो वरना आफत कर देगी।"

'नही उनसे नही कहूँगा।'

दोनो बुढिया के पास पहुँचे। ब्रह्मानन्द को देखते ही बुढिया बोली—"कुम्भ कब जाओगे ?"

ब्रह्मानन्द बोला—"अभी तो कुछ निश्चय नही किया है।"

"तुम तो जरूर जाओगे ?"

"कह नही सकता। भीड भड़क्का बहुत होगा इससे तबियत घबराती है।"

"भीड़ क्या करेगी ?"

"हाँ मैं अकेला जाऊ तब तो भीड़ कुछ नहीं कर सकती, पर बाल-बच्चो को लेकर जाना तो बडी मुसीबत है।"

"जाना चाहिए ! फिर मिलें न मिलें।"

"सो बात तो नही है। जिन्दगी है तो मिलेंगे क्यो नही।"

"जिन्दगी का क्या भरोसा। तुम्हारी माँ तो जरूर जायगी।"

"देखिये !"

"वह जरूर जायगी। मुझ से उसका वायदा है। मैंने भी कहा था मैं जरूर चलूंगी।"

"खैर तुम तो अब जा नही सकोगी !"

बुढिया एक दीर्घ निश्वास छोड कर बोली—"जाऊंगी तो जरूर !"

ब्रह्मानन्द विस्मित होकर सोहन लाल का मुंह ताकने लगे। सोहन-लाल विषाद युक्त मुस्कान के साथ बोले—"अच्छा जाना। मना कौन करता है। पहले अच्छी तो हो जाओ।"

थोड़ी देर पश्चात ब्रह्मानन्द बिदा हुए। चलते समय बुढिया बोली—"अपनी माँ से कह देना। वह जाय तो मुझे भी साथ ले ले। वह मुझ से कह चुकी है।"

"अच्छी बात है कह दूंगा।"

दोनो बाहर आये। ब्रह्मानन्द बोले "इनकी बडी उत्कट इच्छा है जाने की।"

"हाँ, परन्तु जा कैसे सकती है ? बिलकुल असम्भव है।"

"नही जी ! जाने का कोई प्रश्न हो नही है, अच्छा चलता हूँ। कल दोपहर की गाड़ी से जाऊंगा।"

"वहाँ का हाल चाल लिखना।"

"अवश्य।"

(३)

कुम्भ के एक दिन पूर्व सोहनलाल की माता ने पूछा कि—"बेटा! अब कुम्भ के कितने दिन रह गये?"

"कल है अम्माँ।"

"कल" बुढिया चौक कर बोली।

"हाँ।"

',ब्रह्मानन्द की माँ गई?"

"हाँ वह तो शायद चली गई।"

"मुझे नही ले गई!"

"तुम तो माँ पागलो की सी बातें करती हो, भला तुम जाने लायक हो!"

"मेरा उसका वादा हो चुका था।"

"यदि अच्छी होती तो वादा पूरा हो जाता। ऐसी दशा मे कैसे हो सकता है?"

बुढिया मौन हो गई। थोडी देर में सोहनलाल ने देखा कि बुढिया की आखो से आसू बह रहे है। सोहनलाल आँसू पोछते हुए बोला—"तुम व्यर्थ मे दुखी होती हो। जो बात अपने बस की नही है उसमे आदमी क्या करे। भगवान की इच्छा नही है कि तुम जाओ। उसकी इच्छा होती तो तुम्हे बुखार क्यो आ जाता।"

बुढिया ने कोई उत्तर न दिया।

रात के बारह बजे सोहनलाल की पत्नी सोहनलाल को जगा कर बोली "जरा देखो तो अम्माँ की दशा ठीक नही मालूम होती।"

सोहनलाल घबरा कर उठे। माता को देखा। उनकी उलटी साँस

चल रही थी। सोहनलाल घबरा गये। बोले—"इन्हे नीचे उतार लेना चाहिए।"

दोनो ने मिलकर भूमि पर कुशासन लगाया। तत्पश्चात बुढिया को चारपाई से उतार कर आसन पर लिटा दिया। सोहनलाल बोले—"अब इस समय दवा दारू देना तो व्यर्थ है।"

"नही! इस समय कोई जरूरत नही। अब अन्त समय है।" इतना कह कर सोहनलाल की पत्नी सिसकियाँ लेकर रोने लगी। सोहनलाल ने भी रोना आरम्भ किया।

रात के एक बजे के लगभग बुढिया के प्राण छूट गये।

× × × ×

बुढिया की मृत्यु के चार दिन पश्चात् सोहनलाल को ब्रह्मानन्द का पत्र मिला। पत्र मे लिखा था—

प्रिय सोहनलाल!

हम सब सकुशल हरद्वार पहुँच गये। कैसे पहुँचे? यह न पूछो। जो मुसीबते उठाई वह हमी लोग जानते हैं। यहाँ बडी भीड है। रास्ता चलना भी एक समस्या हो रही है। खैर इन बातो का विस्तृत वर्णन मिलने पर बताऊँगा। एक बडी विचित्र बात हुई। कुम्भ के एक दिन पहले अर्थात् १३ तारीख रात को माता जी ने एक बडी अद्भुत बात देखी। सबेरे ३ बजे का समय था। माँ सबसे पहले जागी और शौच जाने के लिये दालान मे पानी लेने गई। सहसा उनकी दृष्टि आँगन की ओर गई। आँगन मे चाँदनी फैली हुई थी। सहसा मा ने देखा कि तुम्हारी माता आँगन मे खडी हैं। मेरी माता की ओर वह देखकर मुस्कराई। माता जी चकित होकर बोली अरी तू कब आई? तुम्हारी माता ने कोई उत्तर न दिया, केवल मुस्करा कर रह गई। मेरी माता जी आँगन की ओर बढी। उनके बढते ही तुम्हारी माता अदृश्य हो गई। मेरा ख्याल तो यह है कि अम्माँ ने स्वप्न देखा होगा

पर वह निश्चय पूर्वक कहती है कि उन्होने यह सब जागृतावस्था और पूरे होश-हवास मे देखा। परमात्मा जाने क्या बात है। माता जी की तबीयत कैसी है? अम्माँ तुम्हे और बहू को आशीर्वाद कहती है।

तुम्हारा
ब्रह्मानन्द

पत्र पढने के पश्चात सोहनलाल पत्नी की ओर देखकर बोले—"माँ तो शायद एक बजे ' ।"

पत्नी बोल उठी —"हाँ एक बजे प्राण छूटे थे।"

"और ३ बजे हरद्वार मे ब्रह्मानन्द की माँ को दिखाई दी।"

विस्मय पूर्ण नेत्रो से पत्नी ने पति की ओर तथा पति ने पत्नी की ओर देखा। दोनो मौन थे।





धर्म का धक्का



शाम को सात बज चुके थे। इसी समय नगर की एक गली मे एक संयासी यह कहता हुआ फेरी लगा रहा था—

चुन चुन माटी महल बनाया
लोग कहे घर मेरा है,
न घर मेरा न घर तेरा,
चिडिया रैन बसेरा है।
रामा मर गये कृष्णा मर गये–
मर गयी सक्खू बाई,
उस मालिक से प्रीति लगाओ,
जिसकी मौत न आई।

अलख निरन्जन ! दो सेर आटा, सेर भर चावल, पाव भर दाल और सोलह इकन्नियो का सवाल है, आज ही आज मे लेगे। अलख निरन्जन।"

जब सन्यासी फेरी लगाता हुआ दूसरी ओर चला गया तो एक व्यक्ति अपने घर के चबूतरे पर आकर एक वृद्ध से, जो अपने द्वार की दहलीज पर इस प्रकार बैठे थे मानो दुनिया से आजिज़ आ गये हो—बोला, "काहे दादा, यह सन्यासी यह क्या कहता है कि रामा मर गये, कृष्णा मर गये—?"

दादा की तबीअत बेमजे थी, इस कारण बोले—"क्या जानें क्या कहता है। सब माँगने-खाने की बाते है। दो सेर आटा, सेर भर चावल? अकेले तो हैं, इतनी जिनिस लेकर क्या करेंगे? बेचेंगे! यही करते है।" यह कह कर दादा पुन शून्य की झाँकी देखने लगे। वह व्यक्ति बोला—"कोई आर्य समाजी मालूम होता है।"

"कोई समाजी होय, अपने से क्या ?"

दादा की उद्विग्नता तोड कर वह व्यक्ति बोला—"आज कैसे सुस्त बैठे हो ?"

"ठीक बैठे है, सुस्त तो नही हैं।"

"सो बात तो नही है, कुछ सुस्ती तो जरूर है।"

दादा मौन होकर विचार करने लगे। वह व्यक्ति कुछ क्षण तक दादा के बोलने की प्रतीक्षा करके बोला–"अब की आवे तो इस संयासी से पूछना चाहिये।"

दादा बोले—"पूछना! कुछ आँय बाँय—शाँय बक देगा।"

थोडी देर मे सन्यासी फेरी लगाता हुआ पुन उस ओर आया। जब वह आवाज लगा कर चलने लगा तो व्यक्ति ने पूछा—'क्यो बाबा! यह रामा मर गये कृष्णा मर गये का क्या मतलब है?"

सन्यासी मुस्कराकर बोला—"मतलब तो साफ है। राम की मृत्यु हुई, कृष्ण की मृत्यु हुई, जो उत्पन्न हुआ उसकी मृत्यु हुई।"

"मृत्यु तो हुई, परन्तु क्या वे भगवान नही थे?"

"अगर थे भी तो इससे क्या?"

"मौत किसको नही आती !"

"सच्चिदानन्द परब्रह्म को ! न जायते म्रियते वा ।"

"न वह जन्म लेता है, न मरता है ।जो अजर अमर अविनाशी, नित्य हैं, उससे प्रीति लगाना चाहिए। नाशवान चीजो से चित्त लगाने मे तो क्लेश ही क्लेश है । उस वस्तु का नाश होने पर महान क्लेश होता है अथवा उस वस्तु को छोडकर स्वयं जाने मे भी क्लेश होता है । अन्त समय उसी मे प्राण अटके रहते हैं । इससे इन सब चीजो को त्याग कर केवल उससे प्रीति लगाओ जो अजर अमर अविनाशी है। कही भी जाओ कही भी रहो, हर समय तुम्हारे साथ है, तुम्हारे पास है ।"

दादा बडे ध्यान से सन्यासी की बात सुन रहे थे। जब सन्यासी अपना कथन समाप्त करके जाने लगा तो बोले—"ठहरो !"

सन्यासी ठहर गया। बाबा घर के भीतर चले गये और कुछ देर बाद आटा दाल इत्यादि लेकर निकले और बोले—"लेओ महाराज।"

सन्यासी ने सब सामन बाँध लिया। इसके पश्चात दादा ने उसे एक रुपया देते हुए कहा—"अब तो आपका सवाल पूरा हो गया।"

"हाँ ! पूरा हो गया। बस अब जाते है।"

"कहाँ ठहरे हो बाबा ?" दादा ने पूछा ।

'गंगा तट पर घाट के निकट !" यह कहकर सन्यासी चल दिया ।

(२)

सन्यासी के चले जाने पर उस व्यक्ति ने पूछा—"कहाँ तो आप सन्यासी पर इतने नाराज थे कि खाने कमाने वाला बता रहे थे और कहाँ स्वय आपने ही सारा सामान दे दिया।"

दादा बोले—"भई, बात उसने ऐसी कही कि चित्त को जँच गई ! सच्ची बात कही। नाशवान से चित्त लगाने मे दु ख ही दु ख है। सुख तो केवल भगवान से चित्त लगाने मे है—जो हर समय पास रहते हैं।

वह व्यक्ति हँस पडा। दादा ने पूछा—"हँसे क्यो ?"

"हँसे यों कि सन्यासी ने एक चुटकुले मे आपको बस मे कर लिया।"

"बस मे तो खैर क्या कर लिया। परन्तु कही पते की, इतना जरूर मानना पडेगा।"

"यह तो पुरानी बात है, कोई नई बात नही है।"

'समय की बात है। इस समय सुनते ही समझ मे आगई। वैसे न जाने कितनी बार सुन चुके होगे। तब न्ही जँची।''

"जान पडता है घर मे कुछ झगड़ा हुआ है तभी इतनी जल्दी जँच गई।"

"झगडा तो यह दुनिया ही है। जब तक दुनिया है तब तक सब झगडा ही झगडा है। और अब तो वह जमाना लगा है कि सब अपने ही मतलब की सोचते है, अपने मतलब को कहते है। न कोई बडे को मानता है न छोटे को।"

यह कह कर दादा भीतर चले गये।

दूसरे दिन दादा उक्त सन्यासी के पास पहुँचे।

गंगातट पर एक फूस की झोपड़ी मे बाबा जी बैठें थे। दादा को देख कर मुस्कराते हुए दादा का स्वागत करने के पश्चात सन्यासी ने पूछा—"कहिये !"दादा हाथ जोड़ कर बोले—'ऐसे ही आपके दर्शन को चला आया।"

"अच्छा ! अच्छा !"

कुछ देर तक मौन बैठे रहने के पश्चात दादा बोले—"महाराज, मेरा चित्त ससार से बहुत ऊब उठा है।"

"क्यो ?" सन्यासी ने पूछा।

"घर के सब आदमी अपने अपने मन के हो गये हैं, हमारी न कोई सुनता है और न मानता है। हम देख-देख कर अपना खून जलाया करते है।"

"यह बड़ा क्लेश है।"

"हाँ! कुछ पूछिये नही, चित्त बडा अशान्त रहता है।"

'अवश्य रहता होगा।"

"इसका कोई उपाय है?"

"संसार मे कोई ऐसी बात नही जिसशा उपाय न हो।"

"उपाय है तो बताइये--आपकी बडी कृपा होगी।"

"उपाय है ईश्वर भजन।"

"ईश्वर भजन ही तो नही होता।"

"होगा क्यो नही। अभ्यास करने से सब होगा।"

"तुम्हारे पास कुछ धन है?"

दादा सन्यासी का मुँह ताकने लगे।

"यदि शान्ति चाहते हो तो हमारी बात का ठीक-ठीक उत्तर दो।"

दादा बोले—"हाँ कुछ धन तो है। लडको से छिपाकर अपने बुढापे के लिए रख छोड़ा है।"

"अच्छा तो पहले वह सब धन हमारे पास ले आओ। जब तक वह तुम्हारे पास रहेगा तब तक तुम्हे शान्ति नही मिलेगी। तुम्हारी अशान्ति का कारण वही है।"

"हमारी अशान्ति का कारण वह नही है।"

"है कैसे नही, तुम्हारा चित्त धन के कारण ही स्थिर नही रहता है।"

"कैसे कहे।"

"देखो! जब तुम्हे कोई कुछ कहता है तो तुम्हे अपने धन के कारण वह बात असहनीय लगती है। धन का अहंकार उत्पन्न होता है। इसी प्रकार धन के कारण ही तुम्हारे अन्दर राग-द्वेष स्थान किये हुए हैं। अतएव अपना वह धन लाकर हमे दो। हम भण्डारा करके उसे खर्च कर दें। बस तुम्हे शान्ति मिल जायगी। जाओ कल सब लेते आना।"

(३)

दादा विचार करते हुए घर आये- मन मे बडे तर्क-वितर्क सकल्प-विकल्प करते रहे। अन्तोतगत्वा यही निश्चय किया कि जब सन्यासी से बात हो चुकी है तब उसकी बात न मानने से अकल्याण हो सकता हैं। यह सोच कर दादा ने दो हजार रुपये के लगभग, जो उनके पास थे, ले जाकर सन्यासी के सम्मुख रख दिये। सन्यासी रुपये देख कर बोला "सब ले आये ?"

"हाँ महाराज ?"

"अच्छा तो कल भण्डारे का प्रबन्ध होगा।"

थोडी देर बैठ कर दादा चल दिए परन्तु उन्हे रह-रह कर रुपयो का ध्यान आ रहा था। कभी सोचते थे कि रुपये देकर ठीक नही किया, फिर सोचते थे कि रुपयो का न रहना ही अच्छा है।

दूसरे दिन जब दादा भण्डारे का प्रबन्ध देखने के लिए सन्यासी के पास गए, तो झोपडी को खाली पाया। लोगो से पूछने पर पता लगा कि कल सन्यासी कही चला गया। यह सुन कर दादा की नीचे की श्वास नीचे और ऊपर की ऊपर रह गई। कुछ देर तक बौखलाये हुए इधर-उधर ताकते रहे। इसके उपरात घर की ओर चले। रुपयो का बड़ा भारी पश्चाताप था। साथ ही सबसे बडा दु.ख यह था कि यह बात किसी से कह भी नही सकते थे। कहने से लोग उल्टे उन्ही को उल्लू बनाते और दादा को कोई बेवकूफ बनाये या समझे यह बात दादा के लिए नितान्त असहनीय थी। इस कारण चित्त मसोस कर मन ही मन दु खी हो रहे थे। यह भी भय था कि यदि घर वाले सुनेंगे कि रुपये सन्यासी को दे दिये तो वे बुरी तरह पेश आवेगे।

दादा जब घर लौटे तो पडोसी ने कहा—"क्या सन्यासी के पास से आ रहे हो ? आज कल सन्यासी के बड़े भक्त हो रहे हो।"

दादा बोले—"वह तो कल कही चले गये।"

'चले गये ! तब तो आपको उनके बिना चैन न पडता होगा !"

दादा ने कोई उत्तर न दिया।

वह व्यक्ति बोला—"नाशवान से चित्त लगाने से यही होता है।"

दादा मन मे सोचने लगे—"ठीक है ! नाशवान से चित्त लगाने से यही होता है। रुपया भी नाशवान, सन्यासी भी नाशवान् ! सब नाशवान् ! कुछ नही ! इस नाशवान् संसार मे सुख नही है।"

वह व्यक्ति फिर बोला—"इन लोगो का मेल क्या। जोगी किसके मीत कलन्दर किसके भाई।"

"कोई किसी का मीत नही।" दादा ने विषादपूर्ण स्वर से कहा।

दूसरे दिन दादा लापता हो गये। बहुत खोज करने पर भी उनका पता न लगा।

लोगो का खयाल है कि दादा सन्यासी के फेर मे घर छोड गये। परन्तु दादा क्यो गए, यह उनके अतिरिक्त और कौन जान सकता है ?





भूत लीला



"यह भुतहा मकान है ।" एक खाली मकान के पडोस मे रहने वाले एक व्यक्ति ने यह वाक्य उन लोगो से कहा जो उक्त मकान को किराये पर लेने के लिए उसे देखने आये थे ।

मकान देखने वालो मे दो पुरुष थे तथा एक स्त्री । एक पुरुष वृद्ध था, दूसरा जवान, स्त्री भी वृद्धा थी । पडोसी की बात सुनकर वृद्ध बोला—"अच्छा ! कैसे मालूम हुआ कि भुतहा मकान है ।"

"इसमे कोई टिकता ही नही, दो-तीन महीने बाद भाग खडा होता है ।'

इधर तो यह छः महीने से खाली पडा है अब लोग जान गये है, इस कारण कोई नही लेता ।"

वृद्धा बोल उठी—"तो हमे ऐसा मकान नही चाहिए—आओ चले ।"

युवक बोला—"इतनी दूर आये है तो देख तो लो ।"

इसी समय मकान के भीतर से एक व्यक्ति ने झाँक कर कहा—

"हाँ आइए।" तीनो प्राणी अन्दर गये। मकान देख कर युवक बोला—"मकान तो अच्छा है।"

वृद्धा बोली—"हाँ पर किस काम का ?"

जो व्यक्ति मकान दिखा रहा था वह बोला "क्यो काम का क्यो नही ?"

वृद्धा बोली—"हमे सब मालूम होगया है।"

"अच्छा ! किसी ने कहा होगा कि मकान भुतहा है।"

"युवक बोला—"तो क्या यह बात झूठ है ?"

"सोलहो आने झूठ। पडोसी चाहते है कि मकान खाली पडा रहे।"

"इससे पडोसियो का क्या फायदा है ?"

"एक तो खामखाह का द्वेष, दूसरे इस मकान की छत का उपयोग करते है।"

"तो क्या छत मिली हुई है ?"

"जी हाँ ! पाँच फीट की चहार-दीवारी है सो उसे फाँद कर आराम से लेटते-बैठते है।"

"लेकिन यह भी सुना है कि मकान छ महीने से खाली पडा है और जो आकर रहता है दो—चार महीने से अधिक नही ठहरता।"

"अरे साहब यही लोग बहका देते है। वैसे इसमे भूत न प्रेत।"

मकान देखकर तीनो व्यक्ति बाहर निकले तो आपस मे सलाह करने लगे। युवक बोला—"पिता जी, मेरी तो राय है कि मकान ले लिया जाय।"

वृद्धा बोली—"नही बेटा, हमारा बाल-बच्चो का घर है—बहू के बच्चा होने वाला है ऐसी हालत मे यह मकान नहीं लेना चाहिए।"

"आप तो माता जी खामखाह लोगो के बहकाने मे आ गई। यह सब झूठ है।"

"बहम तो पड़ गया। झूठ हो या सच। बहम का काम नही करना चाहिए।"

वृद्ध बोल उठा—"अब यहा बहम करने से क्या फायदा। घर चलो, वहाँ चल कर विचार करेंगे।"

"आप भी पिता जी! माता जी की बातो में आ गये। विचार क्या करना है?"

"यही कि लेना चाहिए या नही।"

"जब मकान पसन्द आ गया तब क्यो न लिया जाय? सिर्फ इसलिए कि लोग कहते है—भुतहा है। प्रथम तो यह बात बिल्कुल गलत मालूम होती है। और यदि हुआ भी तो, मै उस भूत को भगा दूंगा।"

"क्या ठीक है! ऐसा कही का बडा ओझा है जो भूत भगा देगा।" माता बोली।

"खैर मैं अपनी जिम्मेदारी पर लिए लेता हूँ।"

यह कहकर युवक ने उस व्यक्ति से मकान लेना निश्चिय कर लिया। उसके माता-पिता ताकते रह गये।

(२)

शान्तिस्वरूप एक ग्रेजुएट युवक है। एक कालेज मे फिलासफी का प्रोफेसर है। उसके पिता महोदय सरकारी पेन्शनर हैं। परिवार मे माता-पिता, पत्नी, एक चार बरस का लड़का, दो बरस की लड़की तथा एक छोटा भाई—जो बी० ए० का विद्यार्थी है—इस प्रकार छः प्राणी है।

शान्तिस्वरूप ने मकान ले लिया और अच्छा मुहूर्त देखकर उसमे आ गये। मकान मे आने के एक सप्ताह बाद लड़की जीने से फिसल कर गिर पडी, उसके चोट आई और रक्तस्राव हुआ। पड़ोसी ने, जिसका नाम चन्दनलाल था और जो एक वकील का मुहर्रिर था अवसर

पाकर कहा—"देखिये मेरी बात ठीक निकली।"

शान्तिस्वरूप माथा सिकोडे कर बोले—"क्या ठीक निकली ?"

"वही भूत वाली बात। लड़की को भूत ने पटक दिया।"

"क्या वाहियात बकते हो ? बच्चे तो गिरते-पड़ते रहते ही हैं।"

"ऐसे गिरते है कि खोपडी फट जाय ?"

"क्या हुआ, संयोग की बात है।"

"खैर अभी आप मेरी बात न मानें, परन्तु आगे चल कर मानना पडेगी।"

"देखा जायगा।"

एक मास व्यतीत होते होते लडके को मोतीझरा निकल आया। चन्दनलाल ने शान्तिस्वरूप के पिता से कहा—"प्रोफेसर साहब तो मेरी बात मानते नही। अब आप देख लीजिए। एक महीने के अन्दर ही लडकी जीने से गिरी और अब लढके को मोतीझरा निकल आया।"

,'क्या बताऊ। आजकल के अग्रेजी पढे-लिखे लड़के आपने सामने किसी की मानते ही नही। मुझे तो भूत-प्रेतो मे विश्वास है। हालांकि अँग्रेजी मैंने भी पढी है।"

"विश्वास होना चाहिए। अपने यहाँ प्रेत-योनि मानी गई है।"

"मै भूत-प्रेतों की लीलाए बहुत सुन चुका हूँ।"

"क्यो नही। आप वृद्ध आदमी है—आपने ससार देखा है। हमने तो सुना ही सुना है देखना तो अभी नसीब नही हुआ। इस मकान मे है तो अवश्य पर हमे कभी न दिखाई पडा। एक यह भी बात है कि हम इसमे कभी रहे नही। रहते शायद कुछ दिखाई-सुनाई पडता। परन्तु जितने लोग इसमे रहे वे सब कहते थे कि इसमे है।"

"क्या बतावे, हमारा लड़का बड़ा हठी हैं, अन्यथा हम तो कभी न रहते।"

"जब तक उन्हे स्वय अनुभव न होगा तब तक वह नही मानेंगे।"

"कुछ हानि उठाकर अनुभव हुआ तो किस काम का।"

"यही तो बात है। भगवान सब कुशल रक्खे।"

वृद्ध ने शान्तिस्वरूप से कहा—"बेटा, महीने भर के अन्दर दोनो बच्चो पर बीती। ऐसा तो कभी नही हुआ।"

"यह तो समय की बात है पिता जी। आज कल तो टायफायड चल ही रहा है। न जाने कितने आदमी इसी मे पड़े है। कुछ केवल हमारे ही यहा थोडे ही है।"

वृद्धा बोली—"यह अपने आगे ब्रह्मा की भी नही मानेगा। लडकपन से ही जिद्दी है।"

"बिना भली-भाँति समझे बूझे मै कैसे मान लूँ ?"

"जब कुछ ऊँच-नीच हो गया तब माना तो किस काम का ?" पिता ने कहा।

"तो पिता जी, किसी के कह देने मात्र से तो मै मान नही सकता। कोई चाहे कि मुझे केवल भयभीत कराकर भगादे सो डौल नही है। यदि हम ऐसा करे तो हमारी शिक्षा-दीक्षा को धिक्कार है।"

यह सुनकर माता-पिता चुप हो गये।

एक दिन शान्तिस्वरूप अपने परिवार सहित रात मे पडे सो रहे थे सहसा कुछ शब्द सुनकर उनकी माता जाग पडी। भली-भाँति जाग्रत होने पर उसे ऐसा जान पडा कि कोई कराह रहा है। उसने ध्यान से सुना तो शब्द छत की ओर से आता प्रतीत हुआ। वृद्धा को तुरन्त भूत का ध्यान आया। ध्यान आते ही उसको पसीना आ गया। उसने पुत्र को पुकारना चाहा पर आवाज न निकली। थोडी देर मे कराहने की आवाज बन्द हो गई। वृद्धा बडा साहस करके उठी और उसने बिजली का स्विच खोला। रोशनी होने पर उसने देखा कि उसका पति तथा उसका छोटा पुत्र निद्रा मे सो रहे हैं। उसकी चारपाई पर उसका पौत्र भी सो रहा है।

शान्तिस्वरूप, उनकी पत्नी तथा लड़की दूसरे कमरे मे थे। वृद्धा ने पति को जगाकर वृत्तान्त बताया। बृद्ध इधर उधर देखकर बोला, 'तुमने स्वप्न तो नही देखा।"

"नही। मैं जाग रही थी।"

वृद्ध बोला—"अच्छा बत्ती बन्द करके लेटो मै जागता रहूँगा।

"नीद तो अब मुझे भी नही आयगी।"

बत्ती बन्द करके पुन. सब लोग लेटे। पन्द्रह-बीस मिनट के पश्चात पुनः वैसी ही कराहने की आवाज आने लगी। वृद्धा ने धीमे स्वर मे पति से पूछा, "सुन रहे हो ?"

वृद्धा भयभीत स्वर मे बोला, "सुन रहा हूँ जरा उठकर बत्ती जलाओ।"

वृद्ध ने पुनः बत्ती जलाई। रोशनी होते ही वह आवाज बन्द हो गई। वृद्ध ने उठकर भली भाँति चारो ओर देखा, परन्तु कुछ समझ मे न आया।

बत्ती बुझाकर पुन लेटे। इसके पश्चात फिर आवाज नही सुनाई पडी—दोनो प्रतीक्षा करते करते सो गये।

प्रात·काल उठकर वृद्धा ने शान्तिस्वरूप से यह बात कही। उसकी समझ मे कुछ न आया। उसने कहा—"आज फिर देखो।"

उस दिन भी दो-तीन बार कराहने की तथा एक बार हँसने की आवाज आई।

शान्तिस्वरूप से यह बात बताई गई।

वह बोला—"अच्छा आज मैं स्वय वहाँ लेटूँगा—तुम बहू के पास लेट जाना।"

उस दिन रात को कभी कराहने तथा कभी हँसने का शब्द सुनाई पडा। शान्तिस्वरूप से हर बार उठ कर रोशनी की तथा खूब देखा भाला परन्तु कुछ समझ मे न आया।

दो दिन तक आवाज सुनने के पश्चात तीसरे दिन शान्तिस्वरूप ने एक बाँस की लम्बी सीढ़ी मँगवाई और उस कमरे मे रखवा दिया। उस दिन रात मे पहले बार जब आवाज आई तो शान्तिस्वरूप ने रोशनी की। आवाज बन्द हो गई। शान्तिस्वरूप बत्ती बुझाकर तथा एक छोटी टार्च हाथ मे लेकर सीढी पर गये और प्रतीक्षा करने लगे। सीढी के निकट ही एक 'स्काई लाइट' था, उसी के निकट से शब्द आता प्रतीत होता था।

शान्तिस्वरूप को पन्द्रह मिनिट प्रतीक्षा करनी पडी। पन्द्रह मिनिट पश्चात पुनः वही आवाज आई। शान्तिस्वरूप ने ध्यान से सुना आवाज 'स्काई लाइट' से आ रही थी। उन्होने अपने हाथ बढा कर 'स्काई लाइट' के चारो ओर फिराया। सहसा उनके हाथ मे कार्ड बोर्ड के चोगे का अन्तिम भाग पडा। उन्होने उसे पकडना चाहा, परन्तु दूसरे ही क्षण वह हाथ से निकल गया।

उस रात फिर कोई आवाज न आई। शान्तिस्वरूप ने सबेरे उठ कर 'स्काई लाइट' की परीक्षा की। 'स्काई लाइट' के ठीक सामने चन्दनलाल की एक खिड़की थी 'स्काई लाइट' तथा खिडकी मे दो फीट का अन्तर था--दोनो मकानो के बीच दो फीट की एक बन्द गली थी। अब शान्तिस्वरूप की समझ मे सब बात आ गई।

प्रातःकाल उठकर उन्होने चन्दनलाल को बुलाकर कहा —"भूत का तो पता लग गया।"

चन्दन का मुख श्वेत पड गया उसने पूछा--"कैसे ?"

"किसी तरह लग गया।"

"भूत आपको दिखाई पडा ?"

"रात मे तो नही दिखाई पड़ा परन्तु इस समय दिखाई पड़ रहा है।"

चन्दनलाल अवाक् होकर उनका मुंह ताकने लगा। शान्तिस्वरूप बोले—"अब यह इन्द्रजाल समाप्त कीजिए अन्यथा मामला पुलिस मे दे दिया जायगा। समझे! हमे आप इस प्रकार डराकर नही भगा सकते।"

चन्दनलाल बिना कुछ उत्तर दिये ही सामने से हट गया। उस दिन से फिर कोई आवाज न सुनाई पडी और न कोई ऐसी घटना ही हुई जो किसी भूत-प्रेत के माथे मढी जाती।

वृद्ध सब समझकर बोला—"बडे बदमाश लोग है। परन्तु भूत होते तो है—यह मै फिर कहूँगा।"

इक्केवाला



(१)

स्टेशन के बाहर आकर मैंने अपने साथी मनोहरलाल से कहा—"कोई इक्का मिल जाय तो अच्छा है—दस मील का रास्ता है।" मनोहरलाल बोले—"आइये इक्के बहुत है। उस तरफ खडे होते हैं।"

हम दोनों चले। लगभग दो सौ गज चलने के पश्चात् देखा तो सामने एक बडे वृक्ष के नीचे तीन चार इक्के खडे दिखाई दिये। एक इक्का अभी आया था और उस पर से दो आदमी अपना असबाब उतार रहे थे। मनोहरलाल ने पुकारा—"कोई इक्का गंगापुर चलेगा।"

एक इक्के वाला बोला—"आइये सरकार, मैं ले चलूं कै सवारी हैं?"

"दो सवारी—गंगापुर का क्या लोगे।"

"जो सब देते हैं वही आप भी दे दीजियेगा।"

"आखिर कुछ मालूम तो हो।"

"दो रुपये का निरख (निर्ख) है।"

"दो रुपये ?—इतना अन्धेर !"

इसी समय, जो लोग अभी आये थे उनमे और उनके इक्के वाले मे झगडा होने लगा। इक्के वाला बोला—"यह अच्छी रही, वहाँ से डेढ रुपया तय हुआ अब यहाँ बीस ही आने दिखाते है।"

यात्रियो मे से एक बोला—"हमने पहले ही कह दिया था कि हम बीस आने से एक पैसा अधिक न देंगे।"

"मैने भी तो कहा था कि डेढ रुपये से एक पैसा कम न लूंगा।"

"कहा होगा हमने तो सुना नही।"

"हाँ सुना नही—ऐसी बात आप काहे को सुने गे।"

"अच्छा तुम्हे बीस आने मिलेगे—लेना हो तो लो नही अपना रास्ता देखो।"

इक्के वाला, जो हृष्ट पुष्ट तथा गौरवर्ण था, अकड गया—बोला, "रास्ता कैसे देखें, कोई अन्धेर है। ऐसे रास्ता देखने लगे तो बस कमाई कर चुके। बाएं हाथ से इधर डेढ रुपये रख दीजिए तब आगे बढियेगा। वहाँ तो बोले अच्छा जो तुम्हारा रेट होगा वह देंगें—अब यहाँ कहते है रास्ता देखो—अच्छे मिले।"

हम लोग यह कथोपकथन सुन कर इक्का करना भूल गये और उनकी बाते सुनने लगे। एक यात्री बडी गम्भीरता पूर्वक बोला—"देखो जी, यदि तुम भलमंसी से बाते करो तो दो–चार पैसे हम अधिक दे सकते है, तुम गरीब आदमी हो—लेकिन जो झगड़ा करोगे तो एक पैसा न मिलेगा।"

इक्के वाला किंचित् मुस्करा कर बोला—"दो चार पैसे! ओफ ओह—आप तो बडे दाता मालूम होते है। जब चार पैसे देते हो तो चार आने ही क्यो नही दे देते।"

"चार आने हमारे पास नही है।"

"नहीं हैं—अच्छी बात है तो जो आपके पास हो वही दे दीजिए–

न हो न दीजिये और जरूरत हो तो एकाध रुपया मै आपको दे सकता हूँ।"

"तुम बेचारे क्या दोगे-चार-चार पैसे के लिए तो झूठ बोलते हो और बेईमानी करते हो।"

"अरे बाबू जी, लाखो रुपये के लिये तो मैंने बेईमानी की नही— चार पैसे के लिए बेईमानी करूँगा? बेईमानी करता तो इस समय इक्का न हाँकता होता—खैर आप जो देना हो दीजिए—नही जाइये मैंने किराया भर पाया।"

उन्होने बीस आने निकाल कर दिये। इक्केवाले ने चुपचाप ले लिये।

उस इक्के वाले का आकार प्रकार, उसकी बात-चीत से मुझे कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि अन्य इक्के वालो की तरह वह साधारण आदमी नही है। इसमे कुछ विशेषता अवश्य है। अतएव मैंने सोचा कि यदि हो सके तो गगापुर इसी के इक्के पर चलना चाहिए। यह सोच कर मैने उससे पूछा—"क्यो भाई, गंगापुर चलोगे?"

वह बोला—"हाँ! हा! आइये।"

"क्या लोगे?"

"वही डेढ रुपया!"

मैने सोचा अन्य इक्के वाले तो दो रुपये माँगते थे, यह डेढ़ रुपया कहता है, आदमी सच्चा मालूम होता है। यह सोच कर मैने कहा— "अच्छी बात है चलो डेढ रुपया दे गे।"

हम दोनो सवार होकर चले। थोडी दूर चलने पर मैने पूछा—"ये दोनो कौन थे?" इक्के वाले ने कहा—"नारायण जाने कौन थे, परदेसी मालूम होते है—लेकिन परले सिरे के झूठे और बेईमान! चार आने के लिए प्राण तजे दे रहे थे।"

मैने पूछा—तो क्या सचमुच तुमसे डेढ़ रुपया ही तय हुआ था?"

"और नही क्या आप झूठ समझते है ? बाबू जी, यह पेशा ही बदनाम है आपका कोई कसूर नही। इक्के, टागेवाले सदा झूठे और बेई-मान समझे जाते है। और होते भी हैं—अधिकतर तो ऐसे ही होते है। इन्हे चाहे आप रुपये की जगह सवा रुपया दीजिये तब भी सन्तुष्ट नही होते।"

मैने पूछा—"तुम कौन जाति हो ?"

"मै ? मैं तो सरकार वैश्य हूँ।"

"अच्छा ! वैश्य होकर इक्का हाँकते हो ?"

"क्यो सरकार, इक्का हाँकना कोई बुरा काम तो है नही।"

"नही मेरा मतलब यह नही है कि इक्का हाँकना कोई बुरा काम है। मैने इसलिए कहा कि वैश्य तो बहुधा व्यापार करते हैं।"

",यह भी तो व्यापार ही है।"

"हां है तो व्यापार ही।"

मै मन ही मन अपनी इस बेतुकी बात पर लज्जित हुआ। अतएव मैंने प्रसग बदलने के लिए कहा—"कितने दिनो से यह काम करते हो ?"

"दो वर्ष हो गये।"

"इसके पहले क्या करते थे।"

यह सुनकर इक्के वाला गम्भीर होकर बोला—"क्या बताऊँ, क्या करता था।"

उसकी इस बात से तथा यात्रियो से उसने जो बातें कही थी उनका तारतम्य मिला कर मैने सोचा—इस का जीवन रहस्यमय मालूम होता है। यह सोचकर मैने उससे पूछा—"कोई हर्ज न समझो तो बताओ।"

"हर्ज तो कोई नहीं है बाबू जी ! पर मेरी बात पर लोगो को विश्वास नही होता, इक्के वाले बहुधा परले सिरे के गप्पी समझे जाते है—इसलिए मै किसी को अपना हाल सुनाता नही।"

"खैर मै उन आदमियो में नही हूँ यह तुम विश्वास रक्खो।"

"अच्छी बात है—सुनिये—"

(२)

मैं अगरवाला बनिया हूँ मेरा नाम श्यामलाल है। मेरा जन्म स्थान मैनपुरी है। मेरे पिता व्यापार करते थे। जिस समय मेरे पिता की मृत्यु हुई उस समय मेरी उम्र १५ साल की थी। पिता के मरने पर घर-गृहस्थी का सारा भार मेरे ऊपर पडा। मैने एक वर्ष तक काम-काज चलाया। पर मुझे व्यापार का अनुभव न था, इस कारण घाटा हुआ और मेरा सब काम बिगड गया। अन्त को और कोई उपाय न देख मैंने वही एक धनी आदमी के यहाँ नौकरी कर ली। उस समय मेरे परिवार मे मेरी माता और एक छोटी बहिन थी। जिनके यहाँ मैंने नौकरी की थी वह थे तो मालदार परन्तु बडे कन्जूस थे। ऊपर से देखने में वह एक मामूली हैसियत के आदमी दिखाई पड़ते थे परन्तु लोग कहते थे कि उनके पास एक लाख के लगभग नकद रुपया है। उस समय मैने लोगो की बात पर विश्वास नही किया था, क्योकि घर की हालत देखने से किसी को यह विश्वास नही हो सकता था कि उनके पास इतना रुपया होगा। उनकी उम्र उस समय चालीस से ऊपर थी। उन्होने दूसरी शादी की थी और उनकी पत्नी की उम्र बीस वर्ष के लगभग थी। पहली स्त्री से उनके एक लडका था वह जवान था और उसका विवाह इत्यादि सब हो चुका था। उसका नाम शिवचरणलाल था। पहले तो वह अपने पिता के पास ही रहता था परन्तु जब पिता ने दूसरा विवाह किया तो वह नाराज होकर अपनी स्त्री सहित फरुखाबाद चला गया—यहाँ उसने एक दूकान कर ली और वही रहने लगा।

उन दिनो मुझे कसरत करने का शौक था इसलिए मेरा बदन बहुत अच्छा बना हुआ था। कुछ दिनो पश्चात् मेरी मालकिन मेरी

बहुत खातिर करने लगी। खूब मेवा मिठाई खिलाती थी और महीने मे दस बीस रुपये नकद दे देती थी। इस कारण मेरे दिन बडी अच्छी तरह कटने लगे। मै मालकिन के खातिर करने का असली मतलब उस समय नही समझा। मैंने जो समझा वह यह था कि मेरी सेवा से प्रसन्न होकर तथा मुझे गरीब समझ कर वह ऐसा करती है। आखिर जब एक दिन उन्होने मुझे एकान्त मे बुलाकर छेड-छाड की तब मेरी आंखे खुली। मुझे आरम्भ से ही इन कामो से नफरत थी। मैं इन बातो को जानता भी नही था न कभी ऐसी सङ्गत ही मे रहा था जिससे इन बातो का ज्ञान प्राप्त होता। मै उस समय जो जानता था वह यह था कि आदमी को खूब कसरत करना चाहिए और स्त्रियो से बचना चाहिए। जब मालकिन ने छेड-छाड की तो मुझे उनके प्रति अनुराग उत्पन्न होने के बदले भय मालूम हुआ। मेरा कलेजा धडकने लगा। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि वह चुडैल है और मुझे भक्षण करना चाहती है।

इक्के वाले की इस बात पर मेरे साथी मनोहरलाल बहुत हँसे—बोले—"तुम तो बिल्कुल बुद्धू थे जी।"

श्यामलाल बोला—अब जो समझिए—"परन्तु बात ऐसी ही थी। खैर मै अपना हाथ छुड़ाकर उनके सामने से भाग आया। अब मुझे उनके सामने जाते डर मालूम होने लगा। यही खटका लगा रहता था कि कही किसी दिन फिर न पकड लें। तीन चार दिन बाद वही हुआ। उन्होंने अवसर पाकर फिर मुझे घेरा। उस दिन मैने उनसे साफ-साफ कह दिया कि यदि वह ऐसी हरकत करेंगी तो मै मालिक से कह दूँगा। बस उसी दिन से मेरी खातिर बन्द हो गई। केवल खातिर बन्द होकर रह जाती वहाँ तक गनीमत थी, परन्तु अब उन्होने मुझे तग करना आरम्भ किया। बात—बात पर डाटती थी। कभी मालिक से शिकायत कर देती थी। आखिर जब एक दिन मालिक ने मुझे मालि-किन के कहने से बहुत डाटा तो मैने उन्हे अलग ले जाकर जहा—लाला

जी, मेरा हिसाब कर दीजिए, मैं अब आपके यहाँ नौकरी नही करूँगा। लाला जी लाल-पीली आँखे करके बोले—एक तो कसूर करता है और उस पर हिसाब माँगता है। मुझे भी तेहा आ गया। मैंने कहा—कसूर किस सुसरे ने किया है। लाला जी बोले—तो क्या मालकिन झूठ कहती हैं ! मैंने कहा—बिल्कुल झूठ ! लाला जी ने कहा-तेरे से उनकी शत्रुता है क्या ? मैने कहा—हाँ शत्रुता है। उन्होने पूछा-क्यो ? मैने कहा—अब आप से क्या बताऊँ ! आप उसे भी झूँठ मानेगे। इसलिए सबसे अच्छी बात यही है कि मेरा हिसाब कर दीजिए। मेरी बात सुनकर लाला जी के पेट मे खलबली मची। उन्होने कहा—पहले यह बता कि क्या बात है ? मैंने कहा—उसके कहने से कोई फायदा नही—आप मेरा हिसाब दे दीजिए परन्तु लाला मेरे पीछे पड गये। मैंने विवश होकर सब हाल बता दिया। मुझे भय था कि लाला को मेरी बात पर विश्वास न होगा, पर ऐमा नही हुआ। लाला ने मेरी पीठ पर हाथ फेर कर कहा, शाबास श्यामलाल, मै तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ। अब तुम आनन्द से रहो, तुम्हारी तरफ कोई आँख उठाकर नहीं देख सकेगा। बस उस दिन से मैं निर्द्वन्द्व हो गया। अब अधिकतर मै मालिक के पास बाहर ही रहने लगा भीतर बहुत कम जाता था। इसके पश्चात् भी मालकिनने मेरे निकलवाने केलिए चेष्टा की, पर लाला जी ने उनकी एक न सुनी,आखिर वह भी हारकर बैठ रही।

इस प्रकार एक वर्ष और बीता। इस बीच मे लाला के एक रिश्ते-दार—जो उनके चचेरे भाई होते थे—बहुत आने-जाने लगे। उनकी उम्र पच्चीस छब्बीस वर्ष के लगभग होगी। शरीर के मोटे-ताजे और तन्दुरुस्त आदमी थे। पहले तो मुझे उनका आना-जाना कुछ नही खटका पर जब उनका आना—जाना हद से अधिक बढ गया और मैने देखा कि वह मालकिन के पास घन्टो बैठे रहते हैं तो मुझे सन्देह हुआ कि

हो न हो दाल मे कुछ काला अवश्य है। लाला जी अधिकतर दूकान मे रहने के कारण यह बात न जानते थे। घर का कहार भी मालकिन से मिला हुआ मालूम होता था इसलिए वह भी चुप्पी साधे था। एक मै ही ऐसा था जिसके द्वारा लाला को यह खबर मिल सकती थी। अन्त मे मैने इस रहस्य का पता लगाने पर कमर बाँधी और एक दिन अपनी आँखो उनकी पापमय लीला देखी। बस उसी दिन मैंने लाला को खबर कर दी। लाला उस बात को चुपचाप पी गये। आठ दस रोज बाद लाला ने मुझे बुलाकर कहा—श्यामशाल तेरी बात ठीक निकली—आज मैने भी देखा। जिस दिन तूने कहा था उसी दिन से मैं इसकी टोह मे था—आज तेरी बात की सत्यता प्रमाणित हो गई अब बता क्या करना चाहिए। मैने कहा—मै क्या बताऊ आप जो उचित समझे करे। लाला ने पूछा—तेरी क्या राय है। मैने इस उम्र मे विवाह करके बडी भूल की पर अब इसका उपाय क्या है? मैने कहा—अपने भाई साहब का आना—जाना बन्द कर दीजिए—यही उपाय है और हो ही क्या सकता है? लाला ने सोच कर कहा—हाँ यही ठीक है। जी मे तो आता है कि इस औरत को निकाल बाहर करू, पर इसमे बडी बदनामी होगी। लोग हँसे गे कि पहले तो विवाह किया फिर निकाल दिया।

मैने कहाँ—हाँ यह तो आपका कहना ठीक है बस उनका आना-जाना बन्द कर दीजिए। अतएव उसी दिन से यह हुक्म लग गया कि लाला जी की अनुपस्थिति मे बाहर का कोई आदमी—चाहे रिश्तेदार हो, चाहे कोई हो—अन्दर न जाने पावे। और वह काम मेरे सिपुर्द किया गया। उस दिन से मैने उन्हे घँसने न दिया। इस पर उन्होने मुझे प्रलोभन भी दिये धमकी भी दी। पर मैने एक न सुनी। मालकिन ने भी बहुत कुछ कहा सुना, खुशामद की, पर मै जरा भी न पसीजा। कहरवा भी बोला—तुमसे क्या मतलब है—जो होता है होने दो। मैने उससे कहा, सुनता है बे तू तो पक्का नमक हराम है, जिसका

नमक खाता है उसी के साथ दगा करता है। खैरियत इसी मे है कि चुप रह—नही तुझे भी निकाल बाहर करूगा।

यह सुन कर कहार राम चुप हो गये।

थोडे दिन बाद लाला के उन रिश्तेदार ने आना-जाना बिल्कुल बन्द कर दिया। अब वह लाला के पास भी नही आते थे। मैंने भी सोचा—चलो अच्छा हुआ आँख फूटी पीर गई।

इसके छ महीने बाद एक दिन लाला को हैजा हो गया। मैने बहुत दौड-धूप की, इलाज इत्यादि कराया, पर कोई फायदा न हुआ। लाला जी समझ गये कि अन्त समय निकट है। अतएव उन्होने मुझे बुलाकर कहा—श्यामलाल, मैं तुझे नौकर नही पुत्र समझता हूँ। इसलिए मे अपनी कोठरी की ताली तुझे देता हूँ। मेरे मरने पर वह ताली मेरे लड़के को देना और जब तक वह न आ जाय तब तक किसी को कोठरी न खोलने देना—बस तुझसे मे इतनी अन्तिम सेवा चाहता हूँ।

मैने कहा—"ऐसा ही होगा, चाहे मेरे प्राण ही क्यो न चले जायँ, पर मै इसमे न अन्तर न पडने दूगा। इसके पश्चात उन्होने मुझे पाँच हजार रुपैया नकद दिये और बोले—यह तो मैं तुझे देता हूं। मैं लेता न था पर उन्होने कहा—तू यदि यह न लेगा तो मुझे दुख होगा। अतएव मैने ले लिये। इसके चार घण्टे बाद उनका देहान्त हो गया। उनके लडके को उनके मरने के तीन घण्टे पहले तार दे दिया गया था। उनके मरने के पाँच घण्टे बाद वह मैनपुरी पहुचा था। उनका देहान्त रात को आठ बजे हुआ और वह रात के दो बजे के निकट पहुँचा था। लाला के मरने के बाद उनकी स्त्री ने मुझ से कहा - कोठरी की ताली लाओ। मैने कहा—"ताली तो लाला, शिवचरण-लाल के हाथ मे देने कह गये है, मै उन्ही को दूँगा।" उन्होने कहा—अरे मूर्ख इससे मुझे क्या मिलेगा। कोठरी खोल कर रुपया निकाल ले—मुझे मत दे, तू ले ले, मै भी तेरे साथ रहूँगी, जहाँ तू ले चलेगा।

तेरे साथ चलूँगी। मैंने कहा—मुझसे यह नही होगा। मै तुम्हे ले जाकर रक्खूँगा कहाँ ? दूसरे तुम मेरे उस मालिक की स्त्री हो जो मुझे अपने पुत्र के समान मानता था। मुझसे यह न होगा कि तुम्हे अपनी स्त्री बना कर रक्खूँ।

बाबू जी, एक घण्टे तक उसने मुझे समझाया, रोई भी, हाथ भी जोड़े, परन्तु मैंने एक न मानी। आखिर उसने अन्य उपाय न देख अपने देवर अर्थात उन्ही को बुलवाया जिनका आना जाना मैंने बन्द कराया था। उन्होने आते ही बड़ा रुआब झाड़ा। मुझे पुलिस मे देने की धमकी दी। पर मै इससे भयभीत न हुआ। तब वह ताला तोडने पर आमादा हुए। मै कोठरी के द्वार पर एक मोटा डण्डा लेकर बैठ गया और मैंने उनसे कह दिया कि जो कोई ताला तोड़ने आवेगा पहले मै उसका सिर तोडूँगा इसके बाद जो होगा देखा जायगा। बस फिर उनका साहस न हुआ। इसी रगडे-झगडे मे रात के दो बज गये और शिवचरणलाल आ गये। मैंने उनको ताली दे दी और सब हाल बता दिया।

बाबूजी जब कोठरी खोली गई तो उसमे से साठ हजार रुपये नकद निकले। इन रुपयो का हाल लाला के अतिरिक्त और किसी को भी मालूम न था। यदि मै मालकिन की बात मान कर बीस पच्चीस हजार रुपये भी निकाल लेता तो किसी को भी सन्देह न होता, पर मेरे मन मे इस बात का विचार एक क्षण के लिए भी पैदा न हुआ। मेरी माँ रोज रामायण पढ कर मुझे सुनाया करती थी और मुझे यही समझाया करती थी, देख बेटा पाप और बेईमानी से सदा बचना- इससे तुझे कभी दुःख न होगा। उनकी यह बात मेरे जी मे बसी हुई थी और इसीलिए मै बच गया। इसके बाद शिवचरनलाल ने भी मुझे एक हजार रुपया दिया। साथ ही उन्होने यह भी कहा कि तुम मेरे पास रहो। पर लाला के मरने से और जो अनुभव मुझे हुए थे उनके

कारण मैने उनके यहाँ रहना उचित नही समझा। लाला की तेरही होने के बाद मैने उनकी नौकरी छोडदी। छः हजार रुपये मे से दो हजार मैने अपनी बहिन के ब्याह मे खर्च किये और दो हजार अपने ब्याह मे खर्च किये। एक हजार लगा कर एक दूकान की और एक हजार बचा कर रक्खा। पर दूकान मे फिर घाटा हुआ। तब मैने मैनपुरी छोड दी और इधर चला आया। नौकरी करने की इच्छा नही थी। इसलिए मैने इक्का घोडा खरीद लिया और किराये पर चलाने लगा—तब से बराबर यही काम कर रहा हूँ। इसमे मुझे खाने भर को मिल जाता है—अपने आनन्द से रहता हूँ—न किसी के लेने मे हूँ न देने मे। अब बताइये, वह बाबू कहते थे कि चार आने पैसे के लिए मै बेईमानी करता हूँ। अब मै उनसे क्या कहता। यह तो दुनियाँ है, जो जिसकी समझ मे आता है कहता है। मैं भी सब सुन लेता हूँ। इक्के वाले बदनाम हैं इसलिए मुझे भी ये बाते सुननी पडती है।"

श्यामलाल की आत्म-कहानी सुनकर मै कुछ देर तक स्तब्ध बैठा रहा। इसके पश्चात मैंने कहा—"भाई तुम तो दर्शनीय आदमी हो, तुम्हारे तो चरण छूने को जी चाहता है।"

श्यामलाल हँसकर बोला—"अजी बाबूजी, क्यो काँटो मे घसीटते हो। मेरे चरण और आप छूवे—राम! राम! मै कोई साधू थोडा ही हूँ।"

मैंने कहा—"और साधू कैसे होते है, उनके कोई सुर्खाब का पर तो लगा होता नही। सच्चे साधू तो तुम्ही हो।" यह सुनकर श्यामलाल हसने लगा। इसी समय गङ्गापुर आ गया और हम लोग इक्के से उतर कर अपने निर्दिष्ट स्थान की ओर चल दिये।

रास्ते में मैंने मनोहरलाल से कहा—"इस ससार मे अनेको लाल गुदड़ी मे छिपे पड़े है। उन्हे कोई जानता तक नही।"

मनोहरलाल—"जी हाँ ! और नामधारी ढोंगी महात्मा ईश्वर की तरह पूजे जाते है ।"

* * * *

बात बहुत पुरानी हो गई है पता नही महात्मा श्यामलाल अब भी जीवित है या नही, परन्तु अब भी जब कभी मुझे उसका स्मरण हो आता है तो मे उसकी काल्पनिक मूर्ति के चरणो मे अपना मस्तक नत कर देता हूँ ।



निर्बल की विजय



संध्या का अन्धकार हो गया था, परन्तु फिर भी पोलैंड के वारसा नगर की सडके अन्धकार मे डूबी हुई थी। वायुयानो के आक्रमण के भय से सारा नगर अन्धकार मे डूबा हुआ था। केवल घरो के भीतर ही आलोक दिखाई पड़ता था। ऐसे ही समय मे वारसा का एक छोटा सा परिवार बड़ी चिन्तित दशा मे बैठा हुआ था। इस परिवार मे एक प्रौढ़ व्यक्ति जिसका नाम स्केविञ्जकी था, उसकी पत्नी मेरीयूका, एक अष्टादश वर्षीय कन्या पोला तथा एक चतुर्दश वर्षीय पुत्र जेकब था।

कुछ देर तक नीरवता छाई रही। सहसा स्केविञ्जकी एक दीर्घ निश्वास छोड़कर बोला—"मेरी समझ मे तो तुम बच्चो को लेकर अपने पिता के पास चली जाओ। मै अस्पताल मे चला जाऊगा। यहा रहने मे खतरा है।"

मेरीयूका बोली—"नही स्केव! मुझसे यह न होगा। हम दोनो साथ ही मरेंगे। पोला और जेकब को चाहो तो भेज दो।"

पोला मुँह फुलाकर बोली—"मैं नही जाऊंगी, जेकब को भेज दो। मैं तो यहाँ अस्पताल मे काम कर रही हूँ। घायलो की सेवा छोडकर मै चली जाऊ ! वाह !"

"मैं अकेला कही नही जाऊगा। तू यहाँ रहे और मैं चला जाऊं—अच्छी कही !" जेकब ने पोला से कहा।

स्केविञ्जकी पत्नी से बोला –"जब तक तुम नही जाओगी मेरी-यूका—तब तक कोई नही जायगा। वारसा पर दो चार दिनो मे आक्रमण होने ही वाला है अभी निकल जाने का समय है। मेरी जो कहो, तो मझे तो इस समय युद्धस्थल मे होना चाहिए था, मगर इस गठिया दर्द के मारे मैं यहाँ अपाहिजो की तरह पडा हूँ—जब कि नगर के सभी आदमी देश पर बलिदान होने के लिए कमर बाँधे घूम रहे है। अपनी इस विवशता पर मुझे कितना दुख है ओफ, जी चाहता है गला काट लू !"

जेकब बोला—"पिता जी तुम्हें छोड कर कोई कही न जायगा। क्या बताऊं यदि मै दो तीन बरस और बडा होता तो मै फौज मे भर्ती कर लिया जाता।" स्केविञ्जकी दीर्घ-निश्वास छोड कर बोला-"भगवान की यही इच्छा है कि हमारा प्यारा देश हमसे छीना जाय और हम लोग बैठे ताका करें। देश की रक्षा मे उँगली तक न हिला सके। ओह ! धन्य है वे लोग जो आज मातृभूमि की रक्षा के लिए अपने प्राणो का बलिदान कर रहे है। मेरे भाग्य मे यह सौभाग्य नही है। अच्छा जैसी प्रभु की मर्जी !" यह कहते कहते स्केव की आँखो से अश्रु धारा बहने लगी।

कुछ देर तक गम्भीरता छाई रही। सब लोग मूर्तिवत बैठे हुये अपने विचारो मे मग्न थे। इसी समय किसी ने द्वार खटखटाया। माता ने पुत्री की ओर देखा। पोला उठकर द्वार खोलने गई। द्वार खोलने पर उसने देखा कि एक चौबीस पचीस वर्ष का सुन्दर युवक सैनिक

वेश मे खडा है। पोला के मुँह से हठात् निकला "मेशीज!" मेशीज़ मुस्करा कर बोला—"हा मैं हूँ पोला।"

पोला द्वार छोडकर बगल मे हो गई और सिर झुकाकर बोली—"आओ अन्दर आओ!"

मेशीज पोला को देखता हुआ अन्दर आया। पोला भी द्वार बन्द करके उसके पीछे पीछे आई। मेशीज ने स्केव तथा मेरीयूका को प्रणाम किया और जेकब से बोला—"मजे मे हो?" जेकब ने मुस्करा कर मेशीज़ से हाथ मिलाया।

स्केब ने पहला प्रश्न किया—"कहो क्या समाचार है, मेशीज?"

"समाचार अच्छे नही हैं। हमारी फौजे पीछे हटती चली जा रही हैं। और वह तो होना ही हे। जर्मन फौजो के सामने हम लोगो के लिये केवल अपने प्राणो की आहुति देने के अतिरिक्त और उपाय ही क्या है?"

"और यही सब से बढ कर उपाय है।" स्केब ने गम्भीरता-पूर्वक कहा।

"आपकी गठिया कैसी है?"

"यह तो मेरे जन्म भर के पापो का फल है मेशीज, जो इस समय मुझे मिल रहा है। ऐसे नाजुक समय पर इस रोग का उभरना—ओफ! बहुत बडे पापो का फल है!!"

"आज मैं रणक्षेत्र मे जा रहा हूँ।"

पोला कुर्सी पर हाथ रक्खे खडी थी मेशीज की बात सुनकर वह चौंक पडी। उसके रक्तिम कपोलो का रंग फीका पड गया। मेरीयूका भी चौंकी। उसने पूछा—"आज ही?"

"हा आज ही दो घन्टे बाद! हमे दो घण्टे की छुट्टी मिली है। उसके बाद हमारी टुकडी रवाना हो जायगी। मैंने सोचा आप लोगो से भी मिल लूँ क्योकि जीवित लौटने की आशा तो बहुत ही कम

है।" यह कहकर मेशीज हँस पड़ा और हँसते हुए एक खाली कुर्सी पर बैठ गया।

"जो मातृभूमि की रक्षा मे अपने प्राण देंगे वे ही तो देश के सच्चे सपूत है। हमारे जैसे लोग तो कुपूत ही हैं—न कुछ सेवा ही कर सके और अन्त मे देश को पराधीन होते देखेंगे। मेशीज ! तुम मेरा खात्मा करके जाओ तो तुम्हे बडा पुण्य हो?' स्केब ने विषाद-पूर्ण स्वर से कहा !

मेशीज गम्भीर होकर बोला--"इतने निराश होने की आवश्यकता नही है। बाद को देश को स्वाधीन करने के लिए भी तो सपूतो की आवश्यकता पड़ेगी। और आप सपूत है। इसमे मुझे जरा भी सन्देह नही है।"

"कम से कम आज इस समय हमारे साथ भोजन करलो।" मेरीयूका ने कहा।

"हाँ ! हाँ ! क्या हर्ज है।"

मेरीयूका उठी और पोला से बोली—"चलो बेटी, खाने का बन्दोबस्त करे।"

दोनो चली गईं।

(२)

एक घन्टे पश्चात मेशीज बिदा हो रहा था।

पोला भी कपडे पहन कर तैयार थी। उसे तैयार देख कर मेशीज ने पूछा—"तुम कहाँ जा रही हो।"

"अस्पताल ! रात की डयूटी है।"

"तब तो बडा अच्छा है। मै तुम्हे अस्पताल पहुँचा कर चला जाऊंगा।"

"सबने अश्रुपूर्ण नेत्रो से मेशीज को विदा किया। जेकब बोला—"आपको फील्ड पर जाते देख मुझे ईर्षा होती है।"

बोली—"भगवान तुम्हारी रक्षा करे !" पोला रूमाल से आँखे पोछती हुई अस्पताल के अन्दर चली गई।

नर्सों के कमरे मे जाकर उसने 'नर्स' की पोशाक पहनी, तत्पश्चात् घायलो के उस वार्ड मे पहुची जहाँ उसकी ड्यूटी थी। जिस नर्स के स्थान पर इसे काम करना था उसका नाम 'आना' था। आना पोला को देख कर बोली 'आज कुछ जल्दी आगई ?"

क्लॉक की ओर देखकर पोला बोली—"हाँ आध घण्टा पहले आ गई। घर मे जी नही लगा इससे चली आई।"

"जरा इस पन्द्रह नम्बर बिस्तरे के रोगी पर ध्यान रखना-सन्निपात में है। इसका बचना कठिन दिखाई पडता है। अच्छा जाती हूँ।"

"जाओ ! आज मेशीज 'फ्रण्ट' पर गया।" आना रुक गई। उसके मुह से निकला—"अच्छा, तभी।"

पोला एकदम रो पडी। आना ने उसके गले मे बाह डाल कर कहा—"ऐं। मरीजो के सामने रोती है—बुरी बात !"

इतना कह कर वह पोला को 'हाता' के बाहर बरामदे मे ले आई। पोला आना के कन्धे पर सिर रखकर कुछ देर तक रोती रही। आना ने उसे सान्त्वना देकर शात किया। पोला दात पीसती हुई बोली—"एक पागल आदमी के पागलपन की बदौलत आज हमारे प्यारे हमसे जबरदस्ती छुडाये जाकर मौत के कराल गाल मे ढकेले जा रहे है। और जगत का स्वामी ईश्वर चुपचाप बैठा यह सब देख रहा है। कौन कहता है कि ईश्वर है। यह सब भ्रम है, सब धोखा है—ईश्वर कही नही, कोई नही।"

आना ने पोला के मुख पर हाथ रख दिया और कहा—"चुप ! ऐसी कुफ्र की बाते नही बकनी चाहिएँ। बलवान का पागलपन सदैव भयानक होता है। ईश्वर है और अवश्य है। अत्याचारियो को वह अवश्य दण्ड देता है। परन्तु उसके कानून मे जबरदस्ती नही है।"

"हाँ, दण्ड देता है—जब हजारों निर्दोषो का सर्वनाश हो जाता

है। यह अच्छा दण्ड है।"

"बिना पाप के दण्ड कैसे दिया जा सकता है पोला! जब पापो का घडा भर जाता है तभी तो पापी दण्डनीय होता है?"

इसी समय भीतर एक रोगी चिलाने लगा। आया बोली—"वही १५ न० वाला है।"

दोनो दौडकर अन्दर गईं और दोनो ने उसे शान्त किया। इसके पश्चात आना बोली—"पोला धैर्य्य रक्खो। सभी योद्धा नही मरते—बहुतेरे बच भी जाते है। भगवान से प्रार्थना करो कि उन बचने वालो मे मेशीज भी। अच्छा मैं जाती हूँ।" आना चली गई। पोला अन्य नर्सो से बात करने लगी।

(३)

दो दिन के पश्चात दोपहर मे पोला अपने परिवार के साथ बैठी बातें कर रही थी। इसी समय सहसा एलार्म (खतरे के घण्टे) बजने लगे।

"क्या बात है!" कह कर पोला ने दौडकर खिड़की खोली और बाहर की ओर झाकने लगी।

इसी समय एक मोटर, जिसमे लाउडस्पीकर लगा था, उधर से निकली। लाउडस्पीकर से आवाज निकल रही थी—"हवाई आक्रमण-होशियार!" सडक पर लोग बेहतासा इधर उधर भागे जा रहे थे। जिनके पास "गेसमास्क" थो वे जल्दी जल्दी उनको चढाते हुए भागते जा रहे थे।

पोला ने खिडकी बन्द कर दी। स्केव ने शान्ति-पूर्वक कहा—"मास्क लगा लो!" वह दूसरे कमरे से चार मास्क ले आई। चारो ने मास्क चढा लिये।

थोडी देर बाद वायुयानो के भर्राटो से आकाश गूंजने लगा। पोला बन्द खिड़की के शीशो से बाहर का दृश्य देख रही थी। सहसा सड़क

के दूसरे पार सामने वाली इमारत पर एक बम गिरा। इमारत का आधा भाग एक भयकर धडाके के साथ उड गया और बचे हुए भाग में आग लग गई। हताहतो के चीत्कार से वायु-मण्डल भर गया। सडक का आधा भाग ध्वस इमारत के मलवे से भर गया। इसी समय फिर एक धडाका हुआ और पोला के बगल वाले मकान से दूसरा मकान धराशायी हो गया। उसमे से दो स्त्रियॉ तथा तीन चार बच्चे चीत्कार करते हुये सडक पर निकल कर भागने लगे। इसी समय उनके पास ही एक धडाका हुआ और वे सब चिथडे चिथडे हो गये। आना ने दोनो हाथो से मास्क के शीशे ढक लिए। स्केव, मेरीयूका तथा जेकब श्वास रोके हुये से मूर्तिवत बैठे थे, फिर एक धडाका—सडक का एक और मकान भरभरा पडा।

एक एम्बुलेन्स-कार (अस्पताल की गाड़ी) घायलो को अस्पताल ले जाने के लिये दौडी चली आ रही थी। सहसा उस पर भी एक बम गिरा और पूरी गाड़ी उड़ गई, आदमियो की लाशे उड़ उड़ कर इधर उधर जा गिरी।

इसी समय दनादन तोपें चलने लगी यह तोपे हवाई जहाजो को गिराने के लिए थी। सहसा एक हवाई जहाज आकाश मे उलट गया और उसमे से एक ज्वाला उत्पन्न हुई। जहाज जलता हुआ एक मकान की छत पर गिरा और उसका कुछ भाग नष्ट करता हुआ लुढक कर नीचे आ गिरा। उसकी आग से वह मकान भी जलने लगा। फिर एक धडाका हुआ और थोडी दूर पर एक मकान उड गया। अब तो धडाको से आकाश गूजने लगा। उधर आकाश से बम गिर गिर कर सर्वनाश कर रहे थे, इधर तोपे चल रही थी, इन धड़ाको मे मनुष्यो के चीत्कारों का क्षीण स्वर सुनाई दे रहा था। मकानो से निकल निकल कर आदमी स्त्री बच्चे सड़को पर भाग रहे थे। जिनके मारक नही लगी थी वे थोड़ी दूर भाग कर गैस के प्रभाव से बेहोश

होकर गिर जाते थे। माताए बच्चो को गोद मे उठाकर भागती थी परन्तु थोडी ही दूर पर लडखडाकर गिर जाती थी। इसी समय अस्पताल की दो गाडियाँ आ गई। उनके रुकते ही आदमी उन पर चढने का प्रयत्न करने लगे। परन्तु गाडी पर बैठे हुए दो सैनिको ने उन्हे सगीनो के बल पर रोका। स्ट्रेचर निकाले गये और जल्दी जल्दी कुछ आहत उनमे डाले गये। इतने रोके जाने पर भी कुछ स्त्रियो ने अपने बच्चो को उनमे डाल ही दिया। गाडियाँ चली गई। पोला खिडकी पर से हट आई और बोली—"ओफ! क्या प्रलय इससे अधिक भयानक हो सकती है?"

* * *

दिन ढल रहा था। हवाई आक्रमण समाप्त हो गया था। सड़को पर ध्वस मकानो के मलवे का ढेर था। कुछ मकान अब भी जल रहे थे। सडक पर यत्र तत्र लाशे बिखरी हुई थी। घायल सब अस्पताल पहुँचा दिये गये थे। इसी समय सहसा पडापड पडापड मशीन गनो की फायरिङ्ग सुनाई पडी। पोला ने दौडकर खिडकी खोली और बाहर गर्दन निकाल कर देखा। डेढ फर्लाङ्ग की दूरी पर चार 'आरमई कार' बराबर बराबर चली आ रही थी और उनके पीछे जर्मनी की सेना आरही थी। पोला बोली—"जर्मन आ गये?"

स्केव बोला—"बन्दूके उठाओ!"

मेरीयूका बोली—"स्केब! क्या बन्दूके चलाओगे? यह तो आत्म-हत्या होगी।"

"तो क्या तुम चाहती हो कि हम लोग जर्मनो के गुलाम बन कर रहे? कभी नही! स्केव गुलाम बन कर रहने की अपेक्षा लडकर मर जाना अच्छा समझता है।" यह कहते हुए स्केव ने गेसमार-उतार डाली। अन्य तीनो ने भी अपनी अपनी मारक उतार ली। मेरीयूका बोली—"स्केव! बच्चो की तरफ देखो।" "हाँ देख रहा हू। मै अपने

बच्चो को जर्मनो का गुलाम नही बनने दूंगा। जेकब बन्दूके लाओ।" जेकब दूसरे कमरे मे गया और तीन बन्दूकें ले आया। इसी समय बाहर सडक पर पोलो की सेना की एक टुकडी जर्मनो की तरफ आती हुई दिखाई पडी। स्केव के मकान के सामने, थोडी दूर पर, रुक गई। सैनिको ने चार मशीनगने कन्धो से उतार कर सड़क पर जमाई और पडापड फायर करने लगे। शेष अन्य सैनिक बन्दूकें चलाने लगे। परन्तु आरमर्ड कारे लोहे के दानवो की तरह आगे बढती चली आरही थी। इधर पोल सैनिक हताहत होकर गिर रहे थे। जब थोडे आदमी रह गये तो वे भागे। परन्तु एक सैनिक बराबर डटा हुआ मशीनगन चलाता रहा। अन्त मे उसके भी गोली लगी और वह अपनी मशीनगन के पास ही लुढक गया।

पोला, जेकब तथा स्केब तीनो खिडकियो पर बन्दूके ताने खडे थे। स्केव गठिया के मारे एक लकडी के सहारे खडा था। कुछ देर मे "आरमर्ड कारें" लाशो को रौदती हुई निकल गई। जब जर्मन सैनिक खिडकियो के सामने आये तो तीन फायर एक साथ हुए। तीन जर्मन सैनिक चक्कर खाकर जा गिरे। फिर तीन फायर—इस बार दो गिरे। जर्मन सैनिको ने इन्हे बन्दूक चलाते देख लिया। पन्द्रह बीस सैनिक दौड पड़े। मकान का द्वार बन्द था परन्तु उन्होंने बन्दूको के कुन्दो से द्वार तोड डाला और भीतर घुस आये। आते ही एक ने स्केव की छाती मे सगीन घुसेड दी। एक ने पिस्तौल से जेकब को खत्म कर दिया।

एक सैनिक पोला को देखकर बोला— 'ओहो ! यह लड़की तो खूबसूरत है !" यह कहकर उसने पोला का हाथ पकडा और घसीटने लगा। मेरीयूका छुडाने दौडी मगर एक ने सगीन से उसे भी समाप्त कर दिया। सैनिक पोला को घसीट कर भीतर दूसरे कमरे मे ले जाने लगा। पोला चिल्लाई—"मुझे मार दो, पर मेरी इज्जत न बिगाड़ो।"

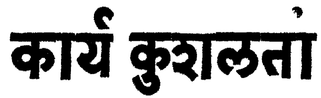
सैनिको ने कहकहा लगाया और जो सैनिक पोला को घसीट रहा था उससे बोले—"देखना कही इसके प्रेम में न फँस जाना। इसने भी गोलियाँ चलाई हैं।"

इसी समय एक जर्मन सैनिक "हटो ! हटो !" कहता हुआ पीछे से आगे आया। उसने आते ही उस जर्मन को जो पोला को घसीट कर ले जा रहा था पिस्तौल से समाप्त कर दिया। पोला उस सैनिक की सूरत देखकर बोली—"मेशीज़ ! तुम ?"

"मेशीज बोला—"हाँ। मैं। मैने एक मुर्दा जर्मन की वर्दी उतार कर पहनी तब तुम तक पहुँच सका।" जर्मन सैनिक, एक जर्मन को जर्मन पर ही आक्रमण करते देख, हतबुद्ध से खडे थे। मेशीज की बात सुनकर सब चिल्ला उठे—"यह तो पोल है !" फिर क्या था एक-दम चार पिस्तौले छूटी और पोला तथा मेशीज दोनो एक दूसरे से लिपटे ही गिर कर समाप्त हो गये।

बलवान के सामने निर्बल की यही विजय थी।





कार्य कुशलता



पुलिस सुपरिटेन्डेएट मिस्टर पी० सी० लडविग जब से आये हैं तब से पुलिस विभाग मे प्राण से आ गये है। मिस्टर लडविग उन अफसरों मे नही हैं जो केवल आवश्यक कागजात पर हस्ताक्षर करने के पश्चात् अपने कर्त्तव्य से छुट्टी पा जाते है। शहर मे जुआरखाने का काफी जोर था। इन जुआरखाने से पुलिस को काफी आमदनी थी। किसी जुआर-खाने से सौ रुपया मासिक, किसी से दो सौ रुपये मासिक—इस प्रकार जुआरखाने की आमदनी के अनुसार ही पुलीस को भी हिस्सा मिला करता था। कभी कभी इन जुआरखानो पर पुलीस द्वारा छापा भी मारा जाता था, परन्तु यह सब केवल दिखाने के लिए किया जाता था। छापा मारने के पहले चुपके से सूचना दी जाती थी कि दौड आ रही है, होशियार हो जाओ, इसके पश्चात् जब वहा पुलीस जाती थी तो मैदान साफ मिलता था। मि० लडविग के सम्बन्ध मे कहा जाता है कि वह लएडन के 'स्काटलैंड याड' के आदमी है। 'स्काटलैएड याड'

लण्डन की कोतवाली का नाम है और इस कोतवाली मे काम करने वाले ससार भर की पुलिस से अधिक प्रवीण तथा ईमानदार समझे जाते हैं। मि० लड्विग की प्रवीणता भी प्रसिद्ध है। वह जहाँ जहाँ रहे वहाँ वहाँ अपराधो मे बहुत कमी हो गई और वहाँ की पुलीस भी यथेष्ट ईमानदार तथा सतर्क रही। मि० लडविग हिन्दुस्तानी भाषा इतनी शुद्ध तथा साफ बोलते हैं कि यह पता ही नही लगता कि कोई अँग्रेज बोल रहा है।

कोतवाल खानबहादुर अलताफ हुसैन अपने कमरे मे विराजमान थे। उनके सम्मुख कोतवाली के इन्चार्ज कुलदीपनारायण, तथा नगर के अन्य थानो के दो तीन इन्चार्ज बैठे हुए थे। कोतवाल साहब कह रहे थे—"अब जरा बहुत हाथ पैर बचाकर काम करना चाहिए। मि० लडविग बडे होशियार और मुस्तैद आदमी है।"

कोतवाली इन्चार्ज कुलदीपनारायण बोले—'चाहे जितने होशियार और मुस्तेद आदमी हो लेकिन हम लोगो से पेश पाना जरा टेढी खीर है।"

"मेरे ख्याल से तो अब कुछ दिनो के लिए जुआरखाने बन्द कर देने चाहिये।" कोतवाल साहब ने कहा।

"क्यो?' कुलदीपनारायण ने पूछा।

"भई लडविग साहब से खौफ मालूम होता है।"

"हुजूर का इकबाल बलन्द है तो सब काम चौकस रहेगा। आखिर बिला हमारी मदद के तो कप्तान साहब कुछ कर ही नही सकेगे।"

"हाँ यह तो दुरुस्त है लेकिन तब भी एहितयात लाजिम है।"

"खैर एहतियात तो की ही जायगी।" एक थाने के इ चार्ज साहब बोले।

"कप्तान साहब को जुआरखाने की बाबत इत्तला तो मिल ही जायगी। जब से वह आये हैं तब से मकामी (स्थानीय) अखबारो ने

शोर मचाना शुरू कर दिया है—यह सब तो उन तक पहुँच ही जायगा।" कोतवाल साहब बोले।

"सुना उर्दू बहुत अच्छी जानते हैं।"

"उर्दू-हिन्दी दोनो जानते है। यह भी सुना है कि उर्दू-हिन्दी के अखबार रोजाना पढते है।"

कोतवाल साहब बोले—"हाँ बडे काबिल आदमी हैं। स्काटलैंड यार्ड के आदमी है।',

"खैर, चाहे जहाँ के आदमी हो—हम लोगो से पेश पाना आसान नही है। वैसे एहतियाद भी रक्खी जायगी।"

(२)

मि० लडविग कोतवाल साहब से वार्तालाप कर रहे थे ! वार्तालाप हिन्दुस्तानी भाषा मे हो रहा था। मि० लडविग कह रहे थे—"अखबारो मे जुआरखानो की बहुत शिकायत निकल रही है।"

"हुजूर इन अखबारो की तो यह आदत है कि जहाँ कोई नया अफसर आया—बस शोर मचाने लगते हैं।"

"तो क्या इनका लिखना एकदम गलत है ?"

"यह तो मै नही कह सकता। जुआरखाने है जरूर; लेकिन उनकी तादाद बहुत कम है।"

"उनका इन्तजाम क्यो नही किया जाता ?"

"उनका अपना इन्तजाम इतना बहतर है कि हम लोगो का दाँव नही लगता। हम लोग जब जब दौड लेकर गये तब तब नाकामी (असफलता) ही हुई।"

"इससे तो जाहिर होता है कि आपका ही कोई आदमी उनसे मिला है जो उन्हे पहले से ही होशियार कर देता है।"

"शायद ऐसी बात हो।"

'आपको उस आदमी का पता लगाना चाहिये।'

"कोशिश बहुत की मगर पता नही लगता।"

"कोशिश की मगर पता नही लगता ! यह बात तो कुछ समझ मे नही आती। कोशिश करने से सबकुछ हो सकता है।"

"अभी कोशिश जारी है।"

"जारी रहनी ही चाहिए। हम चाहते हैं कि एक भी जुआरखाना न रहने पावे।" जुआरखानो का होना पुलीस के लिए शर्म की बात है।"

"बेशक हुजूर। इन्शा अल्लाह ! हजूर की मदद से एक भी जुआरखाना न रहने पावेगा।"

थोडी देर बाद कोतवाल साहब चले गये। उनके जाने के बाद मि० लडविग ने अपने एक आदमी को बुलाया। इस आदमी का नाम हसन अली था। यह मि० लडविग का अपना निजी प्राइवेट नौकर था जो हमेशा उनके साथ रहता था। यह व्यक्ति बडा ईमानदार और विश्वास-पात्र था।

मि० लडविग ने उससे एकान्त मे कहा—"हसन अली ! शहर के जुआरखानो का पता लगाना है।"

"बहुत अच्छा हुजूर, पता लग जायगा।"

"हमे ऐसा मालूम होता है कि पुलीस के कुछ आदमी जुआरखानो से मिले हैं, इस वजह से उनकी गिरफ्तारी नही होने पाती।"

"उन आदमियो का भी पता लग जायगा।"

"क्या करोगे ?"

"मैं भी जुआरी बन कर जुआरखानो में जाया करूंगा।"

"ठीक।"

"जुआ भी खेलना पडेगा।

"तो खेलना ! मि० लडविग ने मुस्कुराकर कहा।"

"उसके लिए रुपये चाहिएं।"

"कितने ?"

"फिलहाल सौ-पचास रुपयो की जरूरत पड़ेगी।"

"वह हमसे ले लेना।"

"तो बस कल से मै जुआरी बनूंगा।"

"हमसे बहुत कम मिलना और जब मिलना तो रात मे।"

"ठीक है।"

"पुलीस वालो को पता न लगे कि तुम हमारे आदमी हो।"

"उनको इसकी हवा भी न मिलेगी। मकान मैने मुहल्ले में ले लिया है। बिसातखाने की गाडी लेकर शहर मे घूमता हूँ।'

'बहुत ठीक।"

"जुआरखानो का खात्मा करना है!"

"बहुत जल्द हो जावेगा।"

मि० लडविग ने उसी समय हसनअली को सौ रुपये दे दिये।

(३)

जुआरखाने की गिरफ्तारी का काम आरम्भ हो गया। हसनअली जिस जुआरखाने मे जाने लगता कुछ दिनो बाद उसी जुआरखाने की गिरफ्तारी हो जाती थी और उसके साथही साथ किसी पुलीसवाले की भी शामत आ जाती थी। इस प्रकार दो तीन जुआरखानो की गिरफ्तारी होने के बाद बहुत से जुआरखाने तो स्वय ही बन्द हो गये। परन्तु कुछ ऐसे भी थे जो अपने को पुलिस की छत्रछाया मे समझकर अपना काम जारी किये हुए थे। इनमे सब से कट्टर एक गुरू का जुआरखाना था। यह गुरू नगर के गुण्डो का सरदार था। यह अलानिया कहता था कि "हमारा जुआ पकड़े तब समझे कि हाँ कुछ हैं।"

एक दिन इस जुआरखाने पर भी छापा मारने की योजना बन गई। दौड़ जाने के आध घण्टा पूर्व एक चीफ कॉस्टेबिल सादे कपड़ो मे जुआरखाने की ओर लपकता चला जा रहा था। जैसे ही यह व्यक्ति

जुआरखाने के निकट पहुँचा, वैसे ही हसनअली, जो जुआरखाने की ओर जा रहा था उससे बोला—"अरे चीफ साहब जरा सुनना।"

"क्या?" चीफ साहब ने उसे घूर कर पूछा। "इस गली मे एक शख्स चोरी का माल एक के हाथ बेच रहा है—अगर आप चले चलें तो आप का कुछ फायदा हो जाय।"

"कितना माल है?"

"है कोई डेढ दो हजार का। आप पहुँच जांय तो चार सौ का फायदा हो जायगा।"

"लेकिन मैं एक जरूरी काम से जा रहा हूँ।"

"सिर्फ दस मिनिट का काम है। इससे ज्यादा वक्त नही लगेगा।"

चीफ साहब कुछ क्षण सोच कर बोले—"अच्छा चलो।" हसन-अली उन्हे एक तङ्ग गली मे लेकर घुसा। जैसे ही चीफसाहब गली मे पहुँचे वैसे ही चार आदमियो ने उन्हे पकड लिया और एक मकान मे घसीट ले गये। हसन अली वहाँ से लौटकर जुआरखाने मे घुस गया। जुआरखाने मे जुआ हो रहा था। हसनअली भी बैठ कर खेलने लगा। पन्द्रह मिनट पश्चात् एक आदमी घबराया हुआ भीतर आया और गुरू से बोला—"गुरू दौड आगई पुलीस ने चारो तरफ से मकान घेर लिया है।"

गुरू ने तुरन्त कहा—"चोर दरवाजा खोलो।"

हसनअली तुरन्त उठा और जो आदमी चोर दरवाजा खोलने चला उसके साथ यह कहता हुआ हो लिया—"यार हमे जल्दी से निकाल दो।" यह लो दो रुपये।"

वह आदमी बोला—"अच्छा चलो।"

पीछे अनेक आदमी घबराये हुए आरहे थे। जैसे ही उस व्यक्ति ने चोर द्वार खोला—सब से पहले हसनअली बाहर निकला। बाहर निकलते ही वह बोला—"अरे यहा पुलीस, बन्द करो दरवाजा।"

भीतर से तुरन्त द्वार बन्द हो गया। हसनअली ने बाहर से जजीर चढा दी और भागा। आगे एक सब इन्स्पेक्टर खडा था। हसनअली को भागते देख उसने उसे पकडा। हसन अली ने झट से दस रुपये का नोट निकालकर सब इन्स्पेक्टर साहब की ओर बढाया। सब इन्स्पेक्टर ने हसनअलो के एक लप्पड मारा और कहा—"साले रिश्वत देता है। चल इधर खडा हो।"

हसनअली को दो कान्स्टेबिलो ने पकड लिया।

हसनअली बोला—"हुजूर, मुझे छोड दीजिए। दस रुपये और ले लीजिए।" सब इन्स्पेक्टर ने उसे डाँट कर चुप कर दिया।

गुरू का जुआ पकड़ा गया। चीफ साहब को, जो गुरू को दौड आने की सूचना देने जा रहे थे, लाइन हाजिर कर दिया गया। जिस सब इन्सपेक्टर ने हसनअली को गिरफ्तार किया था उसे तरक्की मिली। सब के साथ हसनअली पर भी जुर्माना हुआ। इतना हो जाने पर भी पुलीस को यह पता न चला कि हसनअली मि० लडविग का आदमी है।





भ्रान्ति



शाम का समय था। इसी समय एक भिखारी जो फटे-पुराने कपड़े पहने था, सडक पर स्थित एक भवन के कमरे के सामने खडा होकर बोला—"मालिक की बढ़ती रहे—कुछ खाने को मिल जाय।" कमरे में चार व्यक्ति बैठे थे। उसमे एक बोला—"तुम लोगो के मारे और नाक भी मे दम है। यहाँ अपना ही ठिकाना नही—तुम्हे कहा से दे। "दो दिन से तो हम खुद खिचडी खाकर गुजारा कर रहे हैं। गेहूँ मिलता ही नही।"

दूसरा व्यक्ति बोला-"गेहूँ ही क्यो, कोई भी अनाज नही मिलता।"

"न जाने यह दशा कब तक रहेगी।" पहले ने कहा।

"कुछ समझ मे नहीं आता कि क्या होने वाला है। यदि यही दशा महीना-बीस दिन रही तो त्राहि-त्राहि मच जायगी।" तीसरा व्यक्ति बोला-

"त्राहि-त्राहि तो अभी मच रही है। यों कहिये कि लोग भूखों मर जायंगे।"

"हाँ साहब—क्या आश्चर्य है। जब कुछ मिलता ही नहीं तब मर जाना कोई ताज्जुब है?"

भिखारी बोला—"सरकार! पैसा दो पैसा मिल जाय।"

"यह और भी कठिन समस्या है। पैसे और रेजगारी के दर्शन नहीं होते। आज एक रुपया तुड़ाने भेजा तीन बार नौकर वापस आया।"

"क्या कहा जाय! यह समय भी याद रहेगा।"

"अरे भई तुम कहीं नौकरी-वौकरी क्यों नहीं कर लेते। अभी जवान और हट्टे-कट्टे तो हो।"

'नौकरी मिलती नहीं हुजूर!' भिखारी ने कहा।

यह बात तो कुछ समझ में नहीं आती। नौकरी तो मिल सकती है। आज कल नौकरी की कमी नहीं।"

"नहीं मिलती सरकार सच कहता हूँ।"

"तो फौज में भर्ती हो जाओ। फौज में तो बड़ी जल्दी ले लिये जाओगे। तुम्हारे कोई है?"

"फौज में तो मैं चला जाता; पर एक लड़की है सरकार, उसको किसके भरोसे छोड़ जाऊं।"

"कोई नाते-रिश्तेदार नहीं है?"

"दूर पार के हैं। उनके यहां छोड़ने का चित नहीं चाहता।"

"लड़की की क्या उम्र है?"

"जवान है सरकार! उमर तो मैं ठीक बता नहीं सकता, पर बीस बरस की होगी।"

"तोबा! तब भी तुम भीख मांगते हो। नौकरी करके उसका

ब्याह-व्याह करदो। भीख माँगकर तो तुम उसका ब्याह कर चुके। कौन जाति हो?"

"मै तो ब्राह्मण हूँ सरकार!"

"कौन ब्राह्मण?"

"कनौजिया सरकार।"

"ठीक है। ब्राह्मणो को भीख माँगना अधिक सहल पडता है।"

यह कह कर उसने एक इकन्नी जेब से निकाल कर भिखारी की ओर फेकी और कहा—"कोशिश करके कही नौकरी-वौकरी करलो—आज कल मिलो मे अच्छी तनख्वाहे मिल रही है। इस तरह तो लडकी व्याह होना भी कठिन है। भिखारी की लड़की से कौन ब्याह करेगा।"

"हुजूर—आप ही कही रखादे—जन्म भर गुन मानू गा।"

"औरसुनो! लाद दे लदा दे लादन वाला साथ दे।"

"तो हुजूर—मै तो कोशिश करके हार गया।"

कुछ क्षण सोच कर वह व्यक्ति बोला—"अच्छा कल हमारे पास आना। हमारा नाम शङ्करलाल है—मकान का पता समझ लो।"

यह कर उसने मकान का पता बता दिया।

भिखारी बोला—"किस समय आऊँ?"

"सुबह आओ—नौ दस बजे तक!"

"बहुत अच्छा! भगवान आप को सुखी रक्खे।"

इतना कह कर भिखारी आगे बढ गया।

(२)

उसके चले जाने पर वह व्यक्ति बोला—"यदि इसे सचमुच नौकरी करनी होगी तो आयगा अन्यथा न आयगा।"

"आप भी क्या बाते करते है। यह भला नौकरी करेगा। जिसे भीख माँगने का चस्का पड गया वह कभी नौकरी नही कर सकता।"

"खैर देखा जायगा। मैने तो कन्या का वृत्तान्त जान कर कहा कि

एक गरीब का उपकार हो जाय !"

"कौन जाने कन्या है भी या नही।"

"न होगी तो न सही, मेरा क्या ले जायगा।"

"इकन्नी ले गया, जिसकी उसे आवश्यकता थी।"

"आपने भी अच्छी कही। इकन्नी क्या ले गया कोई बडी सम्पत्ति ले गया।"

कुछ देर मे वह व्यक्ति उठ कर चला गया। अब केवल तीन व्यक्ति रह गये। उनमे से एक बोला—

"यह शङ्करलाल बडा दुराचारी है। जवान लड़की का नाम सुन कर कैसी जल्दी इकन्नी निकाल कर दे दी।"

"हाँ जी। इसने लडकी को घतियाया है।"

"बडा पतित है। विश्वनाथ से कहो, यही उसे यहाँ लाये थे, तब से आने लगा।"

विश्बनाथ बोला—"क्या बताऊँ, उस समय मुझे इसकी हरकतो का पता नही था।"

जब से मुझे मालूम हुआ तब से मैने मेल-जोल कम कर दिया है।"

"भई हम ऐसे आदमी का अपने यहाँ आना-जाना पसंद नही करते। लेकिन मना कैसे करे-यह प्रश्न है। सभ्यता और आँखो का शील मुह बन्द किये हुए है।"

विश्वनाथ बोला—"देखिये मै किसी मौके से कह दूगा। मै उसे लाया हूँ। तो मैं ही उसका आना भी बन्द करूँगा।"

"हाँ उस्ताद, करना तो तुम्हे ही चाहिए।"

"मै ही कहूँगा। और शायद जल्दी ही।"

'क्या करोगे ? क्या कहोगे ?"

"हाँ कुछ तो करना ही पड़ेगा। अच्छा मै अग चलूँगा।"

"अजी बैठो भी।"

"एक आवश्यक कार्य याद आ गया।"

यह कह कर विश्वनाथ चल दिया वह लपकता हुआ चला ! कुछ दूर चलनें पर उसने देखा कि वही भिखारी मन्दगति सैं इधर उधर देखता चला जा रहा है। विश्वनाथ लपक कर उसके बराबर पहुँच गया। बराबर पहुँच कर उसने भिखारी से कहा—

"कल विश्वनाथबाबू के यहाँ जाओगे न ?"

भिखारी विश्वनाथ को ध्यान-पूर्वक देख कर बोला—"ओ हो बाबू जी है—हाँ जाऊँगा।"

"तुम्हारा नाम क्या है ?"

"मेरा नाम सीताराम है सरकार-सीताराम दुबे।"

"कहाँ रहते हो ?"

सीताराम ने पता बता दिया। पता बता कर बोला—"एक बाबू ने दया कर के एक कोठरी और दालान दे दिया है—दो रुपये महीने पर उसी मे रहता हूँ।"

"ठीक है !" कह कर विश्वनाथ ने अपनी चाल तेज की।

सीताराम बोला—"आप भी सरकार ध्यान रक्खें—परमात्मा आपके बच्चे सुखी रक्खे।"

"हा ! हाँ !" कहते हुए बिश्वनाथ आगे बढ़ गया !

(३)

उपर्युक्त घटना को एक मास व्यतीत हो गया है। आज कल सीताराम एक मिल मे काम करता है। सबेरे ही घर से निकल जाता है और शाम कों घर लौटता है। उसकी पुत्री सरस्वती दिन भर घर मे अकेली रहती है। सरस्वती देखने मे सुन्दर है। विश्वनाथ ने सीताराम से घनिष्टता उत्पन्न करली थी। अतः वह सीताराम की उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति मे उसके घर आता जाता रहता है। शकरलाल भी

आता जाता है । एक दिन दोपहर को शकरलाल जब सीताराम के घर पहुँचा तो उसने देखा कि सरस्वती बैठी रो रही है । शङ्करलाल ने पूछा- "काहे बिटिया काहे रोती हो ?"

सरस्बती ने कोई उत्तर न दिया । शङ्करलाल ने जब कई बार आग्रह करके पूछा तो वह बोली—"आज बिसनीथ बाबू अभी आये थे ।"

शकरलाल बोला—"हा-तो फिर ?"

सरस्वती उत्तेजित होकर बोली—"वह बडे खराब आदमी है, वह हमारे यहाँ क्यो आते है ? आज उन्होने ऐसी बात कही कि मै सरम के मारे मर गई । मैने कोठरी मे घुसकर भीतर से किवाडे बन्द कर लिये ।"

शकरलाल बिस्मित होकर बोला—"विश्वनाथ बाबू ! वह तो बडा अच्छा आदमी है ।"

"अच्छा है ! वह बडा खराब आदमी है । मै दादा (पिता) से कह कर उसका आना-जाना बन्द करवा दूंगी ।"

शकरलाल बोला—"अभी दो-चार दिन मत कहना । पहले मुझे उससे बात कर लेने दो—अच्छा बिटिया ।"

सरस्वती बोली—"अच्छी बात है । पर अब वह यहाँ आवे नही ।"

"नही आयेगा ।"

उसी दिन शकरलाल विश्वनाथ से मिला । शकरलाल ने पूछा–"क्यो विश्वनाथ यह क्या हरकत थी ?"

विश्वनाथ ने पूछा—"कौन सी हरकत ?"

शकरलाल ने बताया । विश्वनाथ सब सुन कर बोला—"सरस्वती झूठ बोलती है ।"

"वह झूठ नही बोल सकती । उसके झूठ बोलने का कोई कारण नही है, तुम्हारे झूठ बोलने का कारण है ।"

विश्वनाथ चिढ़ कर बोला—"तुम बेचारे मेरे सामने क्या मुंह

लेकर बात कर रहे हो । दुनिया भर के दुराचारी व्यभिचारी । मेरे विरुद्ध एक बात भी बता सकते हो ?"

"क्यो नही, क्योकि तुम्हारे जैसे लोग बगला भगत होते हैं और ठट्टी की ओट मे शिकार खेलते है और मै जो कुछ करता हूँ खुले आम करता हूँ । मै जो कुछ करता हूँ उसे ससार देखता है—तुम जो करते हो उसे भगवान के अतिरिक्त कोई नही देख सकता । खैर ! मै तुम्हे सचेत करता हूँ कि अब वहा कभी मत जाना ।"

"जिससे तुम्हारे लिए रास्ता साफ हो जाय ।"

"नही विश्वनाथ, तुम्हारा खयाल गलत है । मैं सरस्वती को अपनी बेटी के बराबर समझता हूँ ।"

"बेटी ! हा ! हा ! तुम से ऐसी आशा तो नही है । तुम भला किसी जवान और सुन्दर पर स्त्री को बेटी के रूप मे देख सकते हो—असम्भव !"

"हाँ देख सकता हूँ क्योकि मेरी वासनाएँ बहुत कुछ तृप्त हो चुकी है । मै केवल इच्छा करते ही किसी को भी पवित्र दृष्टि से देख सकता हूँ । परन्तु तुम नही देख सकते, क्योकि तुम्हारा हृदय अतृप्त वासनाओ का भाण्डार है । इच्छित वस्तु सामने होने पर तुम उन वासनाओ को दबा नही सकते । तुम तभी तक साधु रह सकते हो जब तक तुम्हारे सामने कोई प्रलोभन न हो और अपनी इच्छा पूर्ति के लिए सुअवसर न प्राप्त हो—समझे ? तुम मे जो कुछ साधुता है वह कृत्रिम है, दुर्बल है । मुझ मे जो कुछ थोड़ी सी भी भलमनसाहत शेष रह गई है वह वास्तविक है—ठोस है । समझे ?"

"अच्छा अच्छा बहुत बातें न बनाओ, मै तुम्हे खूब जानता हूँ ।"

"जानते हो तो ठीक है । परन्तु अब कभी वहाँ मत जाना वरना पछताओगे ।" वह सीताराम की बेटी नहीं, मेरी बेटी है ।"

"तुम्हारे जैसे लफंगे "

विश्वनाथ इतना ही कह पाया था कि शकरलाल ने उसके मुंह पर एक घूँसा मारा। विश्वनाथ लड़खड़ा कर दीवार के सहारे टिक गया। उसके नाक तथा मुह से रक्त बहने लगा।

शंकरलाल ने पूछा—"जाओगे ?"

विश्वनाथ भयभीत होकर बोला—"नही जाऊँगा।"

"प्रतीज्ञा करो।"

"प्रतीज्ञा करता हूँ।" विश्वनाथ ने हाथ से रक्त पोछते हुए कहा।

शङ्करलाल चल दिया।

मित्र मण्डली मे शकरलाल अब भी बडा दुष्चरित्र तथा विश्वनाथ बड़ा सच्चरित्र प्रसिद्ध है, क्योकि शङ्करलाल ने उपर्युक्त घटना का जिक्र किसी से नहीं किया।





प्रेत



प्रताप अपनी माँ का एकलौता पुत्र था। रुक्मिणी २२ वर्ष की वयस मे विधवा होगई थी तब से उसका एकमात्र सहारा प्रताप ही था। विधवा होने के समय प्रताप की वयस १ वर्ष की थी। इस समय उसकी अवस्था १५ वर्ष के लगभग है। रुक्मिणी गरीब है। उसने बड़े धैर्य, सयम तथा कष्ट सहन करके प्रताप को पाला। तीन चार जगह रोटी बनाने की नौकरी करके वह अपना तथा अपने पुत्र का भरण-पोषण करती थी। इधर चौदह वर्ष का हो जाने पर प्रतात को भी एक कारखाने मे नौकरी मिल गई। एक वर्ष तक, जब तक वह काम सीखता रहा, उसे दस रुपये मासिक मिलते थे, परन्तु एक साल बाद उसका वेतन पन्द्रह रुपये मासिक हो गया।

एक दिन प्रताप ने अपनी माता से कहा—"अम्मा अब तुम रोटी करना छोड दो।"

"काहे बेटा ?" रुक्मिणी ने पूछा।

"जब मै कमाता हूँ तब तुम्हे कमाने की क्या जरूरत है ?"

"जरूरत क्यो नही है ? और अब तो मै दो ही जगह की रोटी करती हूँ—दस रुपये मिल जाते है। खाली तेरी कमाई से तो पूरा भी नही पड़ेगा।"

"तुम्हारा रोटी करना मुझे अच्छा नही लगता। अगले महीने मेरी तनख्वाह और बढ जायगी, दो रुपये बढे गे।"

"भगवान करे तनख्वाह खूब बढे परन्तु बेटा अगर आठ दस रुपये मै भी कमाती हूँ तो कौन बुरी बात है ? कल को तेरा ब्याह होगा तो बहू के लिए कपड़ा गहना भी तो बनवाना होगा। उसके लिए अभी से तैयारी न करू गी तो उस समय कहा से आ जायगा ? तेरी तनख्वाह तो खाने-पहनने भर को ही होती है।"

प्रताप सोचने लगा—"अम्माँ ठीक तो कहती है। ब्याह होगा तो रुपये की जरूरत पड़ेगी, तब कहाँ से आयगे ?" यह सोच कर प्रताप मौन हो गया।

रुक्मिणी ने समझ लिया कि उसकी बात प्रताप की समझ मे आ गई। अतः वह यह जानकर मन ही मन बड़ी प्रसन्न हुई कि उसका प्रताप बडा समझदार है।

यद्यपि रुक्मिणी एक प्रकार से सुखी थी, भोजन-वस्त्र का कोई कष्ट न था, प्रताप का स्वास्थ्य भी अच्छा था और वह स्वय भी नीरोग थी, परन्तु तब भी उसके चित्त को शान्ति न थी। एक गुप्त चिन्ता के कारण वह बेचैन रहती थी। उसकी चिन्ता का कारण एक ज्योतिषी की भविष्यवाणी थी। उस ज्योतिषी ने प्रताप की कुण्डली देखकर बताया था—"तुम्हारा लड़का बड़ा होनहार है। यदि जीवित रहा तो बडी उन्नति करेगा। परन्तु इसका जीवित रहना कठिन दिखाई पड़ता है। पन्द्रहवे साल मे इसकी एक अरिष्ट है, यदि उससे बच आया तो फिर अच्छी आयु भोग करेगा।"

प्रताप का पन्द्रहवाँ वर्ष आरम्भ हुए दो मास हो चुके हैं। रुक्मिणी

की चिन्ता का यही कारण है"।

उक्त ज्योतिषी की भविष्यवाणी के पश्चात रुक्मिणी ने न जाने कितने ज्योतिषी को प्रताप की कुण्डली दिखाई परन्तु किसी ने अरिष्ट की बात नही बताई। जब वह स्वय कहती कि 'एक पण्डित ने ऐसा बताया है' तो अन्य ज्योतिषी कहते कि—"हाँ अरिष्ट तो है, पर कोई खटके की बात नही है लडका इस अरिष्ट से बच निकलेगा।" यद्यपि ज्योतिषियो के इस कथन से रुक्मिणी का आशा सूत्र कुछ दृढ हो गया था, तथापि उसे चिन्ता लगी ही रहती थी। उसने पण्डितो के बताये हुये व्रत-उपवास भी करने आरम्भ कर दिये थे। स्नान करने के पश्चात् वह नित्य एक लोटा जल तपेश्वरी देवी पर चढाती थी और उनसे प्रताप के लिए प्रार्थना करती थी। प्रताप इन सब बातो से अनभिज्ञ था।

(२)

एक दिन रात को जब दोनों माँ-बेटा सोने के लिए लेटे तो प्रताप ने प्रश्न किया—"अम्माँ तुमने कभी भूत देखा है?"

प्रताप के मुख से अकस्मात् आज यह नया प्रश्न सुनकर रुक्मिणी के हृदय मे मानो बिजली के करेण्ट का धक्का लगा। उसने आज तक प्रताप से भूत-प्रेत के सम्बन्ध मे कोई बात नही की थी। बचपन मे भी उसने प्रताप को कभी भूत-प्रेत का नाम लेकर नहीं डराया था। एक तो उसका विचार था कि ऐसा करने से बच्चे जन्मभर के लिए भीरु हो जाते है, दूसरे उसे ज्योतिषी का कथन भी ऐसा करने से रोकता था। ज्योतिषी की भविष्यवाणी के कारण प्रताप से भूत-प्रेत की बात करने मे उसे कुछ आशका भी मालूम होती थी। यही कारण था कि वह प्रताप के मुह से उपर्युक्त प्रश्न सुनकर इतनी विचलित हो उठी।

माता को मौन देखकर प्रताप बोला—"अम्मां तुम कहा करती थी कि भूत-प्रेत कुछ नही होता—यह केवल बच्चो को डराने के

लिए कह दिया जाता है।"

"हाँ सो तो ठीक बात है।" रुक्मिणी बोली। "लेकिन अम्माँ हमारे साथ एक कुर्मी काम करता है वह हमे भूत-प्रेतो की बाते खूब सुनाया करता है। वह तो कहता है कि उसने भूत देखे है।"

"झूठ बोलता है।"

"झूठ नही अम्माँ! वह तो कसम खाता था।"

"ऐसो की कसम का क्या इतवार।"

"क्यो, एतवार क्यो नही।"

"बाजे आदमी अपने को बडा जताने के लिए झूठी बाते कह दिया करते है।"

"वह ऐसा नही है।"

"तू क्या जाने कि नही है।"

"वाह! जानता क्यो नही? वह झूठ नही बोलता।"

"तू तो पागल है! उसने कहा और तूने मान लिया।"

"वह कहता था कि भूत से डरना नही चाहिए। जो भूत से डरता नही है उसका भूत कुछ भी नही बिगाड़ सकता। हा जो डरता है उसे वह जरूर तग करता है।"

"खैर होगा, तुझे ऐसी बाते नही सोचनी चाहिएँ।"

"मेरी बडी इच्छा है कि मै भूत देखू।"

"तुझे डर नही लगेगा?"

"डर! अभी तो ऐसा मालूम होता है कि डर नही लगेगा। अच्छा अम्माँ तुम देखो तो तुम्हे डर लगे?"

"मै देखूं ही काहे को?"

"जो दिखाई पड जाय तो—"

"मै कभी नही डरूँगी।"

"हाँ डरना नही चाहिए। मै भी नहीं डरूँगा।"

"वह कुर्मी कहता था कि उसके गान मे एक आदमी है वह भूतो को बुला लेता है ।"

"उसका सिर बुला लेता है । तू ऐसी बाते न सुना कर ।"

"मुझे ये बाते बड़ी अच्छी लगती है ।"

"अभी अच्छी लगती है, फिर डरने लगेगा ।"

"न अम्मा मै डरूंगा नही । अब की वह कुर्मी जब छुट्टी लेकर गाँव जायगा तो मै भी उनके साथ जाऊंगा ।"

"क्यो जायगा ?"

"वहाँ जो आदमी भूत बुलाता है । उससे भूत बुलवा कर देखूंगा ।"

"पागलपने की बात तो कर नही मै भला तुझे वहाँ जाने दूंगी !"

"क्यो, जाने क्यो न दोगी !"

"कोई बात भी हो । खामखाह तुझे कुछ अंट-संट दिखाकर डरा देंगे ।"

"सो मै ऐसा डरने वाला नही हूँ । जब तुम कहती हो कि तुम भूत देख कर नही डरोगी तो मै कैसे डर जाऊंगा—मै भी नही डरूंगा ।"

"मेरी बात और है, तू अभी बच्चा है ।"

"बच्चा हूँ तो क्या हुआ—मुझे डर नही लगता ।"

"डर नही लगता यह तो अच्छी बात है, पर भूत-प्रेत का स्वाँग देख कर डर जाय तो—?"

"नही डरूंगा ।"

"नही डरेगा तो न सही—अच्छा अब सो जा, मुझे भी नींद आ रही है ।"

(३)

उपर्युक्त वृत्तान्त के दो मास पश्चात् प्रताप बीमार पड़ा । पहले तो रोग का निदान सामान्य ज्वर किया गया परन्तु एक सप्ताह व्यतीत होने पर चिकित्सक ने 'टायफायड' (मोती-झरा) निश्चित किया ।

प्रताप की माता भविष्यवाणी के कारण धडकते हुए हृदय तथा विचलित मस्तिष्क से प्रताप की सेवा सुश्रूषा करने लगी। चिकित्सक ने २१ दिन की अवधि नियुक्त की थी, परन्तु जब इक्कीस दिन व्यतीत हो जाने पर भी ज्वर का वेग नही घटा तब चिकित्सक ने उन्तीसवे दिन की आशा दिलाई। परन्तु प्रताप की हालत प्रति दिन चिन्ताजनक ही होती गई।

एक दिन प्रातःकाल प्रताप ने कहा—"अम्मा !"

"क्या है बेटा, मेरा लाल।" रुक्मिणी ने प्रताप के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा।

प्रताप मुस्कराया। उसके दौर्बल्य दीनताहत मुख पर मुस्कान देख कर रुक्मिणी की क्षीण आशा किरण कुछ क्षण के लिए उद्दीप्त हो उठी।

रुक्मिणी भी मुस्कराने का प्रयत्न करती हुई बोली—"क्या है बेटा ?"

"आज रात मैने सपने मे पिता जी को देखा है।"

रुक्मिणी चौक पड़ी। उसकी उद्दीप्त आशाकिरण सहसा क्षीणतर हो गई। वह घबराकर बोली—"पिता जी ! तू पिता जी को क्या जाने ?"

"मै तो नही जानता, पर तुमने बताया जो था।"

"तूने उन्हे पहचाना कैसे ?"

"तुमने पहचनवाया। एक आदमी आया। वह मुझ से बोला—'हमारे साथ चलोगे ? इतने मे जानो तुम भी वहाँ आगई और तुमने कहा कि प्रताप, तेरे पिता जी है।' बस फिर याद नही कि क्या हुआ।

रुक्मिणी का हृदय डूबने लगा। चीख मार कर रो पडने की प्रवृत्ति हुई परन्तु उसने बडे धैर्य के साथ अपने को सँभाला और किञ्चित गद्गद् कन्ठ से बोली—"ठीक है। ला तुझे दवा दे दू—समय हो गया।

यह कहकर रुक्मिणी औषध देने का आयोजन करने लगी।

प्रताप बोला—"अम्माँ, अगर पिता जी तुम्हारे सामने आकर खडे हो जाँय तो तुम्हें डर लगे ?"

"अपने प्यारो से कहीं डर लगता है। डर तो गैर आदमी से लगता है।"

प्रताप मानो माता की बात पर विचार करता हुआ बोला—"हाँ और क्या—अपने से क्या डर ! और किसी से क्या डर ! डरना नही चाहिए। फिर भी आदमी डरते है—क्यो डरते है ?"

जो ना समझ होते है वही डरते है। ले दवा खा ले।'

दवा खाकर प्रताप बोला—"आज तबियत कुछ अच्छी है।' रुक्मिणी की आशा-ज्योति का प्रकाश पुनः कुछ बढा। वह प्रसन्न हो कर बोली—"अब भगवान् चाहे तू जल्दी ही अच्छा हो जायगा।"

परन्तु उसी रात को प्रताप के जीवात्मा ने अपना नश्वर शरीर त्याग दिया। रुक्मिणी के शोक का पारावार न था। उसका रुदन सुन कर लोगो का हृदय पानी होता था। मुहल्ले के चार आदमी आये और उसे समझा-बुझाकर चले गये।

दालान मे अरण्डी के तेल का दीपक टिमटिमा रहा था। उसके क्षीण प्रकाश मे रुक्मिणी प्रताप के शव के पास बैठी हुई थी। शव का सम्पूर्ण शरीर एक चादर से ढका था—केवल मुख खुला हुआ था। रुक्मिणी शव के सिर पर हाथ रखे बैठी थी। चिल्लाते चिल्लाते उसका कंठ स्वर भंग हो गया था। वह कभी चिल्लाकर रोने लगती और कभी हाय हाय करने लगती थी। सहसा दालान के एक कोने मे जहाँ दीपक का न्यूनतम प्रकाश था, हल्के नीले रंग का एक ज्योति मण्डल प्रस्फुटित हुआ। पहले उसकी ज्योति बहुत क्षीण थी, परन्तु क्रमश: वह बढने लगी और साथ ही साथ मण्डल का आकार भी बढने लगा।

रुक्मिणी रोना-चिल्लाना भूल कर मन्त्रमुग्ध की भाति इस मण्डल को देखने लगी। मण्डल कुछ क्षण तक बढने के पश्चात मनुष्य के रूप मे बदल गया। अब रुक्मिणी ने स्पष्ट देखा कि प्रताप खडा है। रुक्मिणी के रोए खडे हो गए। सहसा प्रताप बोला—"अम्मां तुम क्यो इतना रो रही हो ? मै कही गया थोडे ही हूँ, तुम्हारे पास ही तो हूँ।"

रुक्मिणी ने अवाक् मुख तथा विस्फारित नेत्रो से यह सब देखा और सुना। उसकी दृष्टि एक बार शव की ओर गई और वहाँ से उठकर प्रताप की अपार्थिव मूर्ति पर पडी। उसके मुख से एक चीख निकली और वह बेहोश होकर दीवाल के सहारे लुढक गई।

मूर्ति के मुख की मुस्कान विलीन हो गई, उसके स्थान पर निराशा तथा विरक्तता का भाव उदय हुआ। मूर्ति अन्धकार मे घुलने लगी और क्रमशः क्षीण होकर लुप्त हो गई।